यह तो सार्वजनिक पैसा है

गांधीजी के जीवन के प्रेरणात्मक प्रसंग

मेरा जीवन ही मेरा संदेश है

—यह तो सार्वजनिक पैसा है—

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

●

सम्पादक

विष्णु प्रभाकर

●

१९८१

सस्ता साहित्य मंडल,

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान

का संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गये कागज पर मुद्रित है।

प्रकाशक

यशपाल जैन | श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल | सेवा-संस्थान
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली | मथुरा

•

दूसरी बार : १६८१

मूल्य : तीन रुपये

•

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने के समक्ष में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है। उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवन को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

रंगनाथ दिवाकर

विषय-सूची

विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो० क० गांधी

यह तो
सार्वजनिक पैसा है

: १ :

यह तो सार्वजनिक पैसा है

सुप्रसिद्ध हरिजन-यात्रा के समय गांधीजी हरिजन फण्ड के लिए चन्दा इकट्ठा किया करते थे। दिन-भर जो राशि प्राप्त होती थी, उसे रात में बैठकर उनके निजी सचिव गिनते थे और हिसाब करते थे। एक दिन क्या हुआ कि एक हजार दो रुपये कम निकले। जैसे-जैसे पैसा मिलता जाता था, उसे महादेव देसाई एक कागज पर लिखते जाते थे। बार-बार उसे जोड़ा-जांचा, लेकिन गलती का पता नहीं लगा। पांच सौ एक, पांच सौ एक की दो थैलियां दिन में मिली थीं, वे ही इस समय नहीं मिल रही थीं। कोई उन्हें लेकर चम्पत हो गया था। कौन ले गया था, इसका पता लगाना बड़ा कठिन था। महादेवभाई दुखी हो उठे।

तभी एक बन्धु ने जाकर गांधीजी को इस बात की सूचना दी। उन्होंने सुना और मौन रहे। तब उन भाई ने फिर पूछा, "अब इन रुपयों का क्या होगा।"

बिना किसी झिझक के गांधीजी ने उत्तर दिया, "होगा क्या! महादेव को अपनी जेब से भरना होगा। यह तो सार्वजनिक पैसा है।"

और सचमुच महादेवभाई को अपनी व्यक्तिगत आय में से यह रकम भरनी पड़ी।

आप लोगों की मुक्ति का समय समीप आ गया है

दक्षिण अफ्रीका से लौटते समय सन् १९१४ के अन्त में गांधीजी इंग्लैण्ड गये थे, तभी उनकी भेंट विख्यात पत्रकार संत निहालसिंह से हुई थी। ठीक समय पर जब सन्त निहालसिंह अपनी पत्नी-सहित गांधीजी से मिलने उनके निवास-स्थान पर पहुंचे, तो गांधीजी घर पर नहीं थे। एक मित्र ने उन्हें सूचना दी, "गांधीजी को बाहर जाना पड़ा है। वह बीमार थे, परन्तु कुछ ऐसी कठिनाइयां आ उपस्थित हुई, जो उनके गये बिना दूर नहीं हो सकती थीं। वह मोटर द्वारा गये हैं और शीघ्र ही लौट आयंगे। तबतक आप श्रीमती गांधी से बातचीत कर सकते हैं।"

कस्तूरबा उस समय गांधीजी के लिए भोजन तैयार कर रही थीं। काफी देर तक वे लोग बात करते रहे। तभी गांधीजी वहां आ गये। बोले, "मुझे भय लग रहा था, कहीं आप लोग प्रतीक्षा करते-करते थककर चले न जायं। मुझे आप दोनों से मिलने की बड़ी इच्छा थी। हां, यदि मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे बातें करूं, तो आप लोग बुरा तो न मानेंगे?"

वह सचमुच बहुत दुर्बल हो रहे थे। श्री सिंह ने कहा, "आप लेट जाइये। मैं फिर कभी ऐसे मौके पर आ सकता हूं जब आप खूब स्वस्थ होंगे।"

गांधीजी बोले, "जब आपसे भेंट हुई है, तो आपसे बिना बातें

किये न जाने दूंगा।"

और वह, जो मात्र हड्डियों का ढांचा दिखाई दे रहे थे, तुरन्त बात करने में लीन हो गये। वह शब्दों के लिए एक बार भी नहीं रुके, यहांतक कि तारीखें और नाम तक, जिनका मौके पर उल्लेख करने के लिए सदा याद रखना सरल नहीं होता, उनके होंठों से झर आते थे।

बीच-बीच में श्री सिंह ने बातचीत बन्द करने का प्रस्ताव किया। कहा, "गांधीजी, यद्यपि यह बातचीत मनोरंजक है, तथापि मैं आपके शरीर को अनुचित श्रम से बचाना चाहता हूं।"

गांधीजी मुस्कराये। बोले, "इतने वर्षों के बाद मैं आज आपको पकड़ सका हूं। इतनी जल्दी मैं आपको कैसे जाने दे सकता हूं!"

और श्री सिंह की पत्नी के कहने पर भी उन्होंने उन्हें जाने नहीं दिया। वह एक बार जो बात निश्चित कर लेते थे, वह अटल होती थी। उनका भोजन बहुत सूक्ष्म था। श्री सिंह की पत्नी ने उन्हें पौष्टिक भोजन, विशेषकर दूध लेने का सुझाव दिया, लेकिन उन्होंने तर्क द्वारा प्रमाणित कर दिया कि दूध भी मांस का ही अंग है। बोले, "चाहे मैं ऐसा भले ही दिखाई देता हूं कि मैं भूखों मर रहा हूं, परन्तु मैं पर्याप्त से अधिक पौष्टिक भोजन ग्रहण करता हूं। कम अच्छा भोजन करने के सम्बन्ध में मैं आपकी सहानुभूति का अधिकारी नहीं हूं।"

और यह कहते-कहते उनकी आंखें प्रसन्नता से चमक उठीं। श्री सिंह आश्चर्य से उनकी ओर देखते रह गये। उन्हें लगा, इस व्यक्ति के भीतर कोई ऐसी वस्तु अवश्य है, जो आंखों से नहीं

दिखाई देती, लेकिन इनको परिपुष्ट किये रहती है।

गांधीजी देर तक भोजन-विज्ञान की चर्चा करते रहे। उसके बाद श्री सिंह ने दक्षिण अफ्रीका की चर्चा छेड़ दी। बातचीत का प्रवाह तुरन्त उसी ओर बह चला। पता ही नहीं चला कि कितना समय बीत गया। तभी अचानक एक भारतीय महिला वहां आई। उन्हें तुरन्त भीतर बुला लिया गया। उनके पति श्री निर्मलचन्द्र सेन इण्डिया आफिस में नौकर थे। उस समय गांधी जी ने श्री सिंह से कहा, "आप लोगों की मुक्ति का समय समीप आ गया है। मैं इनसे बंगाली पढ़ता हूं।"

श्री सिंह और भी चकित हुए। बीमार होते हुए भी गांधीजी अपने साथ इतना अन्याय क्यों करते हैं? लेकिन तभी उन्हें पता लगा कि गांधीजी भारत पहुंचने के बाद बंगाल जायंगे। उन्होंने कहा, "मेरी इच्छा है कि मैं कविवर से उनकी मातृभाषा में ही बातचीत करने योग्य हो जाऊं।"

गुरुदेव के प्रति गांधीजी की ऐसी भक्ति और प्रेम देखकर श्री सिंह और उनकी पत्नी बहुत प्रभावित हुए और तुरन्त उनकी अनुमति लेकर वहां से चले गये। लेकिन तबतक वे गांधीजी के परम भक्त बन चुके थे।

यहां कोई अछूत है क्या ?

सौराष्ट्र के एक गांव की एक सभा में बोलते हुए गांधीजी ने अस्पृश्यता के प्रश्न की चर्चा भी की। लेकिन वह यहीं नहीं रुक गये। अन्त में पूछा, "यहां कोई अछूत है क्या ?"

उत्तर मिला, "जीहां, हैं। वे उस किनारे पर बैठे हुए हैं।"

गांधीजी के सामने फल और सूखे मेवों से भरा एक थाल रखा हुआ था। उसीकी ओर इशारा करते हुए बोले, "इसे उन बच्चों में बांट दो, मेरी तरफ से नहीं, अपनी ओर से। अपने प्रेम और इस बात की निशानी के तौर पर कि आप उनके प्रति अच्छा व्यवहार करना चाहते हैं बांट दीजिए।"

एक सवर्ण व्यक्ति ने कहा, "क्या मुझे प्रसाद के तौर पर थोड़ा-सा नहीं मिल सकता ? मैं आपका शिष्य हूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम फूल ले जा सकते हो। फल और मेवा तो अछूतों के लिए ही हैं।"

तबतक अछूतों के बच्चे उस किनारे से गांधीजी के पास आ गये थे। सभा में कुछ खलबली-सी मची। कुछ बूढ़ों ने कहा, "गांव में कलयुग आगया है, कलयुग।"

लेकिन किसीने गांधीजी का विरोध नहीं किया और उनको विदा करते समय उल्लास की कमी भी उन्होंने नहीं दिखाई।

मेरे विचारों को मानता कौन है ?

गांधीजी से मिलने के लिए असंख्य व्यक्ति सदा लालायित रहते थे। उस समय भी जब वह बिहार में फैली हुई साम्प्रदायिक आग को शांत करते हुए घूम रहे थे तब भी मिलनेवालों की संख्या में कोई कमी नहीं हुई। उस दिन शाम को दो अंग्रेज बहनें मिलने के लिए आईं। उनके साथ बातचीत करते हुए गांधीजी ने कहा, "विदेशी सत्ता तो अब थोड़े ही दिनों में चली जायगी। लेकिन हमारी रग-रग में व्याप्त पश्चिम की शिक्षा, पश्चिम की संस्कृति, पश्चिम का रहन-सहन, जिस दिन ये सब जायंगे उसी दिन मैं मानूंगा कि हमने सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त की, क्योंकि इस संस्कृति ने हमारे देश के भाइयों और बहनों दोनों के जीवन को खर्चीला और कृत्रिम बना दिया है। इससे जब मुक्ति मिलेगी तभी ऐसा लगेगा कि हमने सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त की है।"

लेकिन उनके जाने के बाद बिहार का मंत्रिमण्डल उनसे मिलने के लिए आया। उससे उन्होंने स्वतन्त्र भारत में मंत्री और गवर्नर कैसे हों, इसपर जो चर्चा की, वह बहुत महत्त्वपूर्ण थी। उन्होंने कहा, "१. मंत्रियों अथवा गवर्नरों को जहांतक हो सके, वहांतक अपने देश में उत्पन्न होनेवाली वस्तुएं ही काम में लेनी चाहिएं और करोड़ों गरीबों को रोटी मिले, इसके लिए उन्हें तथा उनके कुटुम्ब को खादी ही पहननी चाहिए और अहिंसा के इस चक्र को हमेशा घूमता हुआ रखना चाहिए।

२. उन्हें दोनों लिपियां सीख लेनी चाहिए। जहांतक हो सके आपस की बातचीत में भी अंग्रेजी का व्यवहार नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक रूप में तो हिन्दुस्तानी ही बोलनी चाहिए और अपने प्रान्त की भाषा का खुलकर उपयोग करना चाहिए। आफिस में भी जहांतक हो सके, हिन्दुस्तानी में ही पत्र-व्यवहार होना चाहिए, हुक्म या सर्क्यूलर भी हिन्दुस्तानी में ही निकलने चाहिए। ऐसा होने से लोगों में व्यापक रूप से हिन्दुस्तानी सीखने का उत्साह बढ़ेगा और धीरे-धीरे हिन्दुस्तानी भाषा अपने-आप देश की सामान्य भाषा बन जायगी।

३. मंत्रियों के दिल में अस्पृश्यता, जाति-पांति या मेरे-तेरे का भेदभाव नहीं होना चाहिए। किसीका थोड़ा भी असर कहीं नहीं चलना चाहिए। सत्ताधारी की दृष्टि में अपना सगा बेटा, सगा भाई या एक सामान्य माना जानेवाला शहरी, कारीगर या मजदूर सभी एकसे होने चाहिए।

४. इसी तरह उनका व्यक्तिगत जीवन भी इतना सादा होना चाहिए कि लोगों पर उसका प्रभाव पड़े। उन्हें हर रोज देश के लिए एक घंटे शारीरिक श्रम करना ही चाहिए, भले वे चरखा कातें या अपने घर के आसपास अन्न या सागभाजी लगा कर देश के खाद्य-उत्पादन को बढ़ायें।

५. मोटर और बंगला तो होना ही नहीं चाहिए। आवश्यक हो वैसा और उतना बड़ा साधारण मकान काम में लेना चाहिए। हां, अगर दूर जाना हो, या किसी खास काम से जाना हो तो जरूर मोटर काम में ले सकते हैं। लेकिन मोटर का उपयोग मर्यादित होना चाहिए, मोटर की थोड़ी-बहुत

जरूरत तो कभी-कभी रहेगी ही।

६. मेरी तो इच्छा है कि मंत्रियों के मकान पास-पास हों, जिससे वे एक-दूसरे के विचारों में, कुटुम्बों में और कामकाज में ओतप्रोत हो सकें।

७. घर के दूसरे भाई-बहन या बच्चे घर में हाथ से ही काम करें। नौकरों का उपयोग कम-से-कम होना चाहिए।

८. आज जब देश के करोड़ों मनुष्यों को बैठने के लिए शतरंजी तो क्या, पहनने के लिए कपड़े भी नहीं मिलते, तब विदेशी महंगे फर्नीचर—सोफासेट, अलमारियां या चमकीली कुर्सियां बैठने के लिए नहीं रखी जानी चाहिए।

९. और मंत्रियों को किसी प्रकार के व्यसन तो होने ही नहीं चाहिए।

ऐसे सादे, सरल और आध्यात्मिक विचार रखनेवाले जनता के सेवकों की जनता रक्षा करेगी। जनता ऐसे उत्तम सेवकों की रक्षा किये बिना रह ही नहीं सकती, इसमें मुझे तिल-भर भी शंका नहीं है। प्रत्येक मंत्री के बंगले के आसपास आज जो छः या इससे अधिक सिपाहियों का पहरा रहता है, वह अहिंसक मंत्रि-मण्डल को बेहूदा लगना चाहिए। इससे बहुत खर्च बढ़ जायगा।

लेकिन मेरे इन विचारों को मानता कौन है! फिर भी मुझसे कहे बिना रहा नहीं जाता, क्योंकि मूक साक्षी रहने की मेरी इच्छा नहीं है।"

हमें करोड़ों से कतवाना है

एक सभा में एक भाई ने खूब उलझी हुई घुण्डी गांधीजी को अर्पित की। उसे देखकर गांधीजी बोले, "जैसी यह उलझी हुई घुण्डी है वैसी ही देश की गुत्थी उलझी हुई है। मैं चाहता हूं, आप उलझन सुलझाकर कुछ अच्छी घुण्डी भेजें। यदि हम 'सूत के धागे से स्वराज्य' का सिद्धान्त मानते हैं, तो इस घुण्डी को देखने से तो करोड़ों वर्षों में भी हम स्वराज्य के योग्य नहीं बनेंगे। हमारा सूत सुन्दर, बटदार, एकसा और मिल के सूत के मुकाबले का होना चाहिए, क्योंकि हमें करोड़ों से कतवाना है।"

तभी कुछ विद्यार्थी आ गये। उनमें एक बड़े ओहदेदार की लड़की थी। उसने हस्ताक्षर-पुस्तिका पर गांधीजी के हस्ताक्षर मांगे। गांधीजी ने कहा, "देखो भाई, बड़े आदमी के हस्ताक्षर का आप इतना मूल्य लगाते हैं, तो वह आपको मुफ्त नहीं मिलेगा।"

विद्यार्थियों ने कहा, "यदि आप मूल्य मांगें तो हम देने के लिए तैयार हैं।"

बेचारे विद्यार्थी! उन्हें क्या पता था, गांधीजी क्या मांग बैठेंगे! शायद चन्दा देने के लिए कहेंगे! गहने मांगेंगे! अधिक-से-अधिक खादी पहनने के लिए कहेंगे, इसीलिए वह तुरन्त मूल्य देने को सहमत हो गये थे। गांधीजी ने कहा, "हस्ताक्षर के बदले मैं दो हजार गज मासिक सूत की मांग करता हूं।"

उनमें जो लड़कियां थीं उन्होंने तो इस शर्त को स्वीकार कर लिया, परन्तु जो लड़के थे, वे यह वचन कैसे देते! उन्होंने कहा, "हम प्रयत्न करेंगे।"

: ६ :

यह आदमी बहुत ही बढ़िया इंसान है

अपेन्डिसाइटिस के आपरेशन के बाद गांधीजी आराम कर रहे थे। कर्नल मॅडक ने उनका आपरेशन किया था। उनसे गांधीजी खूब बातें करते थे। निजी बातें भी होती थीं। उस दिन भी बहुत बातें हुई। उनकी चर्चा करते हुए गांधीजी ने महादेवभाई से कहा, "कर्नल मॅडक कहते थे कि सरकार का पत्र आया है। उसमें लिखा है कि गांधी अब स्वस्थ होता जा रहा है, इसलिए अब उसके सम्बन्धियों के अतिरिक्त दूसरे मित्रों से उसे क्यों मिलने देना चाहिए? मैंने कहा, 'मुझसे मिलने मित्र आते हैं, परन्तु मैं उनसे कोई राजनैतिक बात नहीं करता। मेरे मित्र ही मेरे संबंधी हैं। यदि उनसे मिलने की आज्ञा नहीं मिलती, तो मैं किसीसे भी नहीं मिलना चाहता।' मॅडक ने उत्तर दिया, 'मुझे आपसे यह बात नहीं कहनी चाहिए, परन्तु मैं कह सकता हूं। इन लोगों ने मुझे खूब दबाया हैं, परन्तु अब मैं नहीं दबूंगा। पच्चीस वर्ष तक नौकरी की है। अब दो महीने और बाकी हैं। फिर मैं निवृत्त हो जाऊंगा। इसलिए मुझे क्यों दबना चाहिए? मैं उन्हें फोन कर दूंगा, परन्तु आप इस तरह व्यवहार करें कि

जैसे आपको कुछ मालूम ही नहीं। अपने मन पर कोई असर न होने दें। मैं उनसे लड़ता रहूंगा।"

महादेवभाई ने पूछा, "तब तो छोड़ने की जो बातें चल रही हैं, वे गप्पें ही हैं।"

गांधीजी बोले, "और नहीं तो क्या, लेकिन यह आदमी बहुत ही बढ़िया इंसान है। इसकी स्वतन्त्रता का पार नहीं है। इसके स्थान पर कोई भारतीय इतनी स्वतन्त्रता न दिखाता।"

: ७ :

क्यों, अब मेरे साथ मैदान में आना है ?

श्री उत्तमचन्द शाह तपेदिक के रोगी थे। डाक्टरों ने उन्हें सलाह दी कि वह आबू जाकर रहें। मार्ग में साबरमती-आश्रम पड़ता था। श्री शाह ने निश्चय किया कि एक रात वहां भी बिताई जाय।

आश्रम में पहुंचने के बाद श्री शाह गांधीजी से मिलने गये। कुछ क्षण उनके पास बैठे होंगे कि उन्हें चक्कर आ गया और वह संज्ञाहीन हो गये। होश आने पर क्या देखते हैं कि गांधीजी हँसते हुए उनसे कह रहे हैं कि ऐसी बीमारियों में देखभाल से तबीयत ज्यादा सुधरती है। मालूम होता है, कोई अनुभवी आदमी तुम्हारे पास नहीं है। अब आबू जाने का विचार छोड़-कर कुछ दिन यहीं रहो।

श्री शाह वहीं रह गये और गांधीजी ने अपनी स्नेहभरी

देखभाल से उन्हें चकित कर दिया। उनकी जांच करने की रीति तो अद्भुत थी। वह परिचर्या करनेवाले को भी परखते थे। एक दिन श्री शाह की पत्नी से पूछा, "तुम साबूदाने की खीर कैसे तैयार करती हो?"

वह बोलीं, "साबूदाने को साफ करके दूध में डालकर पका लेती हूं।"

गांधीजी ने पहले तो उनका कान पकड़कर सबको हँसाया। फिर कहा, "पहले साबूदाने को पानी में चढ़ा दो, फिर दूध डाल-कर गर्म करो। इस तरह दूध को ज्यादा देर चूल्हे पर नहीं रखना पड़ेगा। अगर शुरू से ही दूध में साबूदाना डाल दिया जाय तो वह खीर बीमार को नुकसान पहुंचायेगी।"

इसके बाद शुरू हुई प्राकृतिक चिकित्सा। डा० तलवलकर भी आ गये थे। फिर तो श्री शाह बीमार के साथ-साथ बीमारी का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थी बन गये। धीरे-धीरे वह जान गये कि उनकी तबीयत किस प्रकार सुधर सकती है। गांधीजी प्रार्थना के पहले, रोज उन्हें देखने आते और समय हो जाने पर वापस दौड़ते। श्री शाह ने उन्हें मना किया, लेकिन वह कब माननेवाले थे! वह प्रतिदिन आते रहे। समय होने पर घड़ी देखते और कहते, "अब मैं भागता हूं।"

इस प्रकार आठ महीने बीत गये। बीच में गांधीजी दिल्ली गये तो उनसे आज्ञा लेकर ही गये। अब वह बिलकुल ठीक हो गये थे। सोचते थे कि अगर गांधीजी का सहारा न मिलता तो क्या होता! एक दिन वह टहल रहे थे कि गांधीजी आ पहुंचे। हँसते हुए बोले, "क्यों, अब मेरे साथ मैदान में आना है?"

यह कहकर उन्होंने आस्तीन चढ़ाने का अभिनय किया, जैसे वह शाह को तन्दुरुस्तों की दुनिया में आने के लिए आह्वान कर रहे हों और कह रहे हों कि देखा, हो गये न देखभाल से ठीक।

: ८ :

यह पैसा लाखों रुपयों के दान से अधिक पवित्र है

उस दिन गांधीजी ने अहमदाबाद स्थित 'कड़िया की बाड़ी' में स्त्रियों की एक सभा में भाषण दिया। उसके बाद चन्दा जमा करने का काम आरम्भ हुआ। कुछ लड़कियां और आश्रम की कुछ बहनें स्त्रियों के बीच घूमने लगीं। सभा का दृश्य देव मंदिर जैसा बन गया। सभी स्त्रियों ने पैसों, अठन्नियों और रुपयों की जी खोलकर वर्षा की। कुछ बहनें पास में अधिक न होने के कारण बड़ी व्यथित हुईं। अनेकों ने अपने घर के पते लिखवाये और आग्रह किया कि वहां आकर अमुक-अमुक रकम ले जायं।

थोड़ी ही देर में लगभग सवा सौ रुपये की रेजगारी का ढेर वहां लग गया। उसमें तांबे के सिक्के, पैसे और अधन्नियां ही नहीं, अधेलियां और पाइयां तक भी थीं। गांधीजी के नेत्र यह सब देखकर सजल हो आये। उन्होंने कहा, "यह पैसा लखपतियों के लाखों रुपयों के दान से अधिक पवित्र है। तांबे के हर पैसे के साथ अहमदाबाद की बहनों की आत्मा जुड़ी हुई है। इस पवित्र

धन से मैं देश के बालकों को शिक्षा दूंगा। इन पवित्र पाई-पैसों के दान पर स्वराज्य लाऊंगा।"

इसी समय एक लड़की ने सहसा अपने कान का जेवर उतारा। दूसरी ने भी उतारा। तीसरी ने हाथ की चूड़ी निकाली। बस, क्षण-भर में चारों ओर से गहने उतरने लगे। देखते-देखते अंगूठियां, कंठियां, लौंग, मालाएं, पहुंचियां, लॉकेट और इसी प्रकार के छोटे-बड़े अलंकारों का ढेर लग गया। गांधीजी विनोद करते जाते थे और समझाते भी जाते थे कि जो बहनें घर जाकर नये जेवर मांगें, उनके गहने मुझे नहीं चाहिए। उन स्त्रियों ने गांधीजी को विश्वास दिलाया कि वे अब कभी भी आभूषण नहीं पहनेंगी।

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आपत्काल में आपको यही शोभा देता है। यही आप सबका धर्म है।"

जब वह आश्रम लौटे तो संध्या हो आई थी। सायंकालीन प्रार्थना में भी चन्दे का यह क्रम टूटा नहीं। कुछ बहनों ने तो चूड़ियों पर की सोने की पत्तियां ही उतारकर अर्पित कर दीं।

: ९ :

अच्छा, तो ये स्वतंत्र हैं!

उस वर्ष किसान-सम्मेलन सोजित्रा (सौराष्ट्र) में हुआ था। वहां से पांच मील की दूरी पर एक गांव है सुणाव। वहां से कुछ शिक्षक लोग १३० विद्यार्थियों को लेकर सवेरे-ही-सवेरे

गांधीजी के दर्शन करने के लिए आये। प्रत्येक शिक्षक और विद्यार्थी ने अपने हाथ से पीनी हुई रुई की अपने हाथ से बनाई हुई पूनियों का सूत काता था। बढ़िया ढंग से काता हुआ और पैक किया हुआ ऐसा लगभग दो लाख गज सूत उन्होंने गांधीजी के चरणों में अर्पित किया। गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए। उनसे बातचीत करते हुए उन्होंने पूछा, "कहो भाई, तुम इतना सारा कातते हो सो किसलिए ?"

उस लड़के ने उत्तर दिया, "आपने हम सबको कातने में लगाया है, हम सबको जगाया है।"

गांधीजी ने कहा, "मैं तुमसे कातने को कहता हूं, इसलिए कातते हो या तुम्हें कोई लाभ है?"

तुरन्त उत्तर मिला, "हम परतन्त्र थे, अब स्वतन्त्र हो गये।"

गांधीजी ने पूछा, "स्वतन्त्र कैसे हो गये ?"

उत्तर मिला, "अपने कपड़े हम अपने ही हाथ से कते हुए सूत से बनवाते हैं। इसलिए उतने स्वतन्त्र तो हो ही गये हैं न!"

गांधीजी ने कहा, "अच्छा, तुम अपने कपड़े भी बना लेते हो।"

एक शिक्षक ने कहा, "इनमें ज्यादातर के कपड़े इनके हाथ के कते सूत के ही हैं।"

गांधीजी ने पूछा, "कितनों के ऐसे कपड़े हैं ?"

कुछ विद्यार्थियों ने हाथ उठाये। गांधीजी बोले, "अच्छा, तो ये स्वतन्त्र हैं। अब देखूं, परतन्त्र कितने हैं ?"

हँसते-हँसते परतंत्रों ने भी अपने हाथ ऊपर उठा दिये।

उनसे गांधीजी ने पूछा, "अच्छा, अब तो तुम लोग भी बनवा लेने का निश्चय करोगे न ?"

इसपर झट से एक लड़का खड़ा हो गया और बोला, "हमें कांग्रेस को सूत भेजना पड़ता है और इसके अतिरिक्त फिर कपड़ों के लिए सूत कातना मुश्किल होता है।"

"क्यों मुश्किल होता है ?"

उत्तर मिला, "दूर के गांव से पैदल आना पड़ता है और पैदल जाना पड़ता है। पाठ याद करने का समय भी मुश्किल से मिलता है। अक्सर रात को भी कातना पड़ता है।"

गांधीजी हँसते हुए बोले, "इसमें मुझे दया नहीं आयगी। मैंने बहुत लड़कों को तुमसे ज्यादा चलाया है। दक्षिण अफ्रीका में सवेरे चार बजते ही मैं आश्रम के विद्यार्थियों को २१ मील चलाता था। फिर थोड़ा नाश्ता होता था। शाम को फिर २१ मील चलते। इस प्रकार ४२ मील हो गये न ! इसलिए मुझे तुमपर दया नहीं आती। इतना चलते रहो, काम करते रहो और अपने शिक्षकों की भी अकड़ निकालते रहो।"

आगे गांधीजी बोले, "अकड़ निकालने का अर्थ जानते हो ? अकड़ या बांक किसमें पड़ती है ?"

एक विद्यार्थी बोला, "तकुवे में।"

गांधीजी ने पूछा, "तब बांक निकालने का अर्थ क्या है ?"

दो-तीन विद्यार्थी बोल उठे, "सीधा करना।"

गांधीजी ने कहा, "ठीक है। शिक्षकों को सीधा किस तरह किया जा सकता है ? उन्हें तंग करके ?"

विद्यार्थी बोले, "जी नहीं, सवाल करके।"

गांधीजी बोले, "ठीक कहा। गीताजी को जानते हो? गीताजी में कहा है 'प्रणिपात करके, बार-बार प्रश्न करके, सेवा करके, अर्जुन ने श्रीकृष्णजी की अकड़ निकाली थी। वैसे ही तुम भी निकाल लो। अच्छा, तो अब तुम यह सूत लाये, इतना सुन्दर काम करके दिखाया, इसके लिए तुम्हारा उपकार मानूं क्या?"

विद्यार्थी बोले, "जी, नहीं।"

"क्यों?"

"यह तो हमारा फर्ज है। गरीबों के लिए कातना सबका कर्त्तव्य है। इसमें उपकार काहे का!"

गांधीजी बोले, "एक और दूसरे कारण से भी मुझे तुम्हारा उपकार नहीं मानना चाहिए। तुम भले ही मुझे मां-बाप के रूप में न मानो, परन्तु मैं तुम्हारा बुजुर्ग तो माना ही जाऊंगा न? बुजुर्ग के नाते मैं क्या तुम्हारा उपकार मान सकता हूं!"

: १० :

निराशा शब्द मेरे शब्दकोश में नहीं मिलेगा

उस दिन एक पारसी भाई मिलने आये। उनका सम्बन्ध किसी मासिक पत्र से था। उसीको दिखाकर वह गांधीजी से बोले, "पारसी युवकों को संदेश के रूप में यदि दो शब्द भेज दें तो हम अगले अंक में छाप देंगे।"

फिर कुछ रुक कर कहा, "गांधीजी, आज्ञा हो तो एक सवाल पूछना चाहता हूं।"

गांधीजी बोले, "बेशक, पूछिए।"

उन्होंने पूछा, "आपने असहयोग किया, उस समय आपने कितनी आशा रखी थी और आज आप कितने सफल हुए। बड़ी आशा रखी, इसलिए क्या बड़ी निराशा नहीं हुई ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "निराशा शब्द मेरे शब्दकोश में ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। एक वर्ष में स्वराज्य मिलेगा, इस विश्वास की एक शर्त थी और वह यह थी 'यदि लोग इतना करें तो यह होगा।' यह शर्त विवेक-शून्य नहीं थी। कोई कहे कि एक-पर-एक सीढ़ी चढ़ें तो आकाश पर चढ़ा जा सकता है। यह बात मूर्खतापूर्ण कही जायगी, परन्तु मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैंने बिना विचारे शर्त रखी।"

पारसी भाई ने पूछा, "आपने जो आशा रखी थी, वह लोगों की शक्ति से बाहर नहीं थी ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, बिल्कुल नहीं। मैंने अपनी आंखों से दिसम्बर महीने में देखा था कि सब लोग अनुभव कर रहे थे कि स्वराज्य मिल गया है और वह मिल जाता, परन्तु चौरीचौरा आ गया। वह आ गया, सो भी सुन्दर हुआ। ईश्वर की कला अकल्पनीय है। वह जो करता है, वह अच्छे के लिए करता है। यदि स्वराज्य मिल गया होता, तो शायद परिणाम बुरा होता। पिछले दो वर्ष में जो अनुभव हुए हैं उनसे लगता है कि यह हमारे भले के लिए ही हुआ। मुझे यह हरगिज नहीं लगता कि हमने लड़ाई हारी है।"

पारसी भाई ने कहा, "हार ही में जीत है, यही न ?"

गांधीजी बोले, "हां, जितनी मंजिल पार की है, उतनी जीत है। आज हम अपनी शक्ति अधिक अच्छी तरह जानते हैं।"

पारसी भाई ने कहा, "परन्तु गांधीजी, आपको तो लोग हवाई किले बनानेवाला कहते हैं। मुझे तो लगता है कि अच्छा वकील सबकुछ देखभाल कर ही काम करनेवाला होता है। इसलिए आप भी अच्छे वकील होने के साथ गहराई में जाने-वाले हैं। निराशा हो तो कोई बात नहीं, आज आपने जो कदम उठाया है, वह उठाना ही चाहिए, यह समझकर ही उठाया है न ?"

गांधीजी ने कहा, "आपकी और सब बातें सच हैं, परन्तु एक गलत है। मुझे निराशा थी ही नहीं। मुझमें निराशा हो तो मैं लड़ूंगा ही नहीं। मैं आपसे कहता हूं कि मैंने जीवन-भर इसी प्रकार वकालत की है। मैं समझता कि मामला साफ है, मेरा मुवक्किल जरूर जीतेगा तभी मामला लेता। अगर ऐसा होता कि आधे रास्ते जाकर मुझे पता लगता कि मामला कमजोर है। मुवक्किल ने कुछ-न-कुछ किया है, तो मैं विनयपूर्वक मजिस्ट्रेट से कह देता, 'मामले का फैसला मेरे विरुद्ध कर दीजिये।' मुव-क्किल को भी समझाता कि उस फैसले से सन्तोष माने। ऐसा करने के कारण मैं बहुत ही थोड़े मुकदमे हारा हूं। मेरा यह मामला भी ऐसा ही था। मैंने कुछ कुरबानियों की आशा रखी थी।"

पारसी भाई बोले, "क्या आपने यह मान लिया था कि आप जितनी कुरबानी चाहते हैं, लोग उतनी देंगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इस बारे में कोई शंका नहीं।"

चरखा राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है

गांधीजी उन दिनों सेवाग्राम में 'आदिनिवास' के एक कोने में रहते थे। आश्रम अभी पूरी तरह विकसित नहीं हो पाया था। उन्हीं दिनों श्रीमन्नारायण भी वर्धा आकर रहने लगे थे। एक दिन गांधीजी ने उन्हें मिलने के लिए बुला भेजा। वह आये। गांधीजी ने पूछा, "तुमने कहांतक शिक्षा पाई है ?"

श्रीमन्नारायण ने उत्तर दिया, "बापूजी, मैंने अंग्रेजी में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "क्या तुम चरखा चलाना जानते हो ?"

श्रीमन्नारायण ने उत्तर दिया, "जानता तो नहीं, पर अब चलाना सीख लूंगा।"

गांधीजी मुस्करा उठे। कहा, "चरखा तो हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है। इसके द्वारा ही हम देश की गरीब जनता की सेवा कर सकेंगे। तुमने अभी तक चरखा-शास्त्र न सीखकर खाक ही छान रखी है न !"

फिर थोड़ा रुके। बोले, "अच्छा, अब मैं तुम्हें असली खाक छानने का काम दूंगा।"

और उन्होंने तुरन्त एक आश्रमवासी को बुलाया। कहा, "देखो, कल से श्रीमन् को भी आश्रम की संडासों के लिए मिट्टी छानने के कार्य में अपने साथ ले लेना।"

हम जनता के पैसे पर जीते हैं

लन्दन में गोलमेज परिषद के समय एक दिन गांधीजी कहीं भोजन के लिए गये। जो कुछ वह भारत में खाते थे वही वह वहां भी खाते थे। उन दिन मीराबहन शहद की बोतल साथ ले जाना भूल गईं। खाने के समय उन्हें इसकी याद आई। अब क्या करें? शहद तो अवश्य चाहिए। उन्होंने तुरन्त किसीको बाजार भेजा और शहद की एक बोतल मंगवा ली।

गांधीजी भोजन करने बैठे। उस बोतल में से उन्हें शहद परोसा गया। उसे देखकर वह तुरन्त बोले, "यह बोतल तो नई दिखाई देती है। पुरानी बोतल कहां गई?"

मीराबहन ने डरते-डरते कहा, "बापू, वह बोतल मैं भूल आई थी। यह बाजार से नई मंगाई है।"

गांधीजी सहसा गंभीर हो गये। कई क्षण बाद उन्होंने कहा, "एक दिन शहद न मिला होता तो मैं भूखा थोड़े ही मर जाता! तुमने नई बोतल क्यों मंगाई? हम जनता के पैसे पर जीते हैं। जनता के पैसे की फिजूलखर्ची नहीं होनी चाहिए।"

: १३ :

वह कोई दूसरा गांधी होगा

सत्याग्रह के प्रारम्भिक दिनों में गांधीजी एक बार बम्बई के 'मणिभवन' में ठहरे हुए थे। तभी एक दिन, विदेशी कपड़े का बहिष्कार किस प्रकार सफल हो सकता है, इसपर वे नगर-सेठों से चर्चा कर रहे थे। बाहर अनेक स्त्री पुरुष उनके दर्शनों के लिए उत्सुक उनकी राह देखते थे कि रात के नौ बजने को हुए। उन्हें कई सभाओं में जाना था। टेलीफोन की घंटी बराबर बजे जा रही थी। परन्तु वह थे कि निश्चित भाव से सब काम करते चले जा रहे थे। आखिर बाहर जाने के लिए उठे। कुर्ता-टोपी मांगा और खड़े-ही-खड़े कुछ लोगों से बातें करने लगे। सहसा एक गुजराती सज्जन ने कहा, "आपको याद होगा जब आप लन्दन में कानून का अध्ययन कर रहे थे, तब सर मंचरजी भावनगरी के सभापतित्व में आपका एक भाषण हुआ था। उसमें आपने इस बात का प्रतिपादन किया था कि इंग्लैण्ड में रहनेवाले गुजरातियों को अंग्रेजी में ही अपना कामकाज करना चाहिए।"

आश्चर्यचकित होकर गांधीजी ने पूछा, "क्या मैंने यह कहा था कि अंग्रेजी में ही कामकाज करना चाहिए ?"

दृढ़ स्वर में उन गुजराती सज्जन ने कहा, "जीहां।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "क्या अंग्रेजी में ही ?"

वह बन्धु बोले, "जीहां।"

महात्माजी खिलखिलाकर हँसे। बोले, "तो फिर वह कोई

दूसरा गांधी होगा। मैंने तो इस जीवन में किसी गुजराती को यह सलाह नहीं दी कि अपनी भाषा छोड़कर अंग्रेजी में कामकाज करे। एक सभा की बात मुझे खूब याद है, लेकिन उसमें मैंने गुजराती में ही कामकाज करने के लिए कहा था।"

अब उन गुजराती बन्धु की समझ में अपनी भूल आई। लज्जा से लाल होकर वह बोले, "जीहां, जीहां, आप ठीक कहते हैं। मेरे मुंह से गलती से गुजराती के स्थान पर बराबर 'अंग्रेजी' निकलता गया। बड़ी भूल हुई क्षमा कीजिये।"

: १४ :

नमक ही खारापन छोड़ दे तो...

एक बार गांधीजी प्रवास में थे। जैसा उनका स्वभाव था जरा भी समय मिलता, वह चर्खा कातने लगते थे। उस दिन जैसे ही उन्होंने अपना चर्खा खोला तो देखा कि उसमें पूनी नहीं हैं। चलते समय वह रखना भूल गये। उन्होंने महादेवभाई को आवाज दी और कहा, "अरे महादेव, मैं सेवाग्राम से रवाना होते समय पूनी रखना भूल गया। अपने पास से थोड़ी पूनियां दोगे न ?"

महादेवभाई ने कोई जवाब नहीं दिया। गांधीजी ने फिर पूछा, "दोगे न, भाई ?"

महादेवभाई ने डरते-डरते कहा, "बापू, मैं रोज कातता हूं, लेकिन आज चर्खा ही लाना भूल गया।"

गांधीजी गम्भीर हो उठे, जैसे अन्तर्मुख हो गये हों।

'हरिजन' के लिए उन्हें एक लेख लिखना था। उसमें इस घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा, "नमक ही अपना खारापन छोड़ दे तो उसका यह अलोनापन कौन मिटायगा ? जो सूत-कताई का प्रसार करनेवाले हैं वे ही अपने व्रत का ध्यान न रखें तो उन्हें कौन सिखायगा ?"

: १५ :

मैं सशस्त्र पहरेदार कभी भी सहन नहीं कर सकता

गांधीजी उन दिनों (१९३८) उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त की यात्रा पर थे। बादशाह खान (अब्दुल गफ्फार खां) स्वाभाविक रूप से उनकी सुरक्षा के लिए बहुत चिन्तित रहते थे। जब गांधीजी उत्तमानजई में ठहरे हुए थे, तब बादशाह खान ने कुछ खुदाई खिदमतगारों को रात के समय अपने मकान की छत पर तैनात कर दिया था। वे सशस्त्र थे। ऐसा करने से पहले उन्होंने गांधीजी से केवल इतना पूछा था कि पहरेदार तैनात करने पर वह कोई ऐतराज तो नहीं करेंगे ?

गांधीजी का उस दिन मौन-दिवस था। उन्हें पूरी योजना का पता भी नहीं था। उन्होंने सिर हिला दिया। इसका मतलब था कि उन्हें कोई ऐतराज नहीं है।

बादशाह खान आश्वस्त हो गये, परन्तु बाद में जब गांधीजी को पता लगा कि वे पहरेदार सशस्त्र हैं तो उन्होंने कहा, "मैं

दूसरों की सुरक्षा के लिए यह बात किसी तरह सहन कर सकता हूं, परन्तु अपनी सुरक्षा के लिए सशस्त्र पहरेदारों का बिठाना कभी सहन नहीं कर सकता। जीवन-भर जिस बात का मैंने अभ्यास किया है, वह इसके बिलकुल विरुद्ध है।"

बादशाह खान ने गांधीजी की भावना का सम्मान करते हुए सशस्त्र पहरेदारों को हटा लिया, लेकिन उनका आग्रह था कि निरस्त्र पहरेदार तो रखे ही जा सकते हैं।

न चाहते हुए भी गांधीजी ने एक सीमा के भीतर इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

: १६ :

भूल सुधारना भी मनुष्य का स्वभाव ही है

१९३७ के पूना-प्रवास में एक शाम को श्री हरिभाऊ फाटक और श्री बालू काका कानेटकर गांधीजी से मिलने के लिए आये। चरखे के दोनों ही प्रेमी थे। हरिभाऊजी तो विनय की मूर्ति थे। उन्हें प्रेमपूर्वक फटकारते हुए गांधीजी बोले, "मुझे जो चोट पहुंची है उसका दर्द अभी दूर नहीं हुआ है। शर्म की बात है कि पूना में पूनियां नहीं। आप सब तो चरखे की बड़ी-बड़ी बातें हांकनेवाले हैं। बालू काका कानेटकर से तो मुझे बड़ी निराशा हुई है।"

बालू काका ने अपना बचाव करते हुए कहा, "मैं क्या करूं!

मैंने पांच साल पहले कहा था कि धारा सभा के कार्य-क्रम से हमारे रचनात्मक कार्य-क्रम का सत्यानाश हो जायगा।"

गांधीजी बोले, "इसका आज की बात से क्या संबंध है! आपने तो ढिंढोरा पीट-पीटकर न जाने कितनी बार कहा है कि बिना चर्खे के स्वराज्य नहीं मिलने का। आपकी इस चरखा-भक्ति का क्या अर्थ हुआ! टेक और श्रद्धा के लिए जीने और मरने तथा दिन-रात काम करने के लिए अगर हम तैयार नहीं तो हमारी टेक और श्रद्धा किस काम की! यह तो सत्य का ध्वंस हुआ। हम मिथ्याचारी बन रहे हैं। इसलिए स्वराज्य आवे तो कहां से!"

हरिभाऊ ने कहा, "आपके ये प्रहार निरर्थक नहीं। कल ही मकरसक्रांति के शुभ दिवस से हम ठीक तरह से आरम्भ कर देंगे। हरेक तरह का सरंजाम जब चाहिए तब मिलेगा।"

गांधीजी बोले, "ठीक, भूल सुधारना भी मनुष्य का स्वभाव ही है, जिस तरह कि भूल करना मनुष्य का स्वभाव है। बस, अब जहां से भूल की हो वहां से गिनो। मेरे प्रहारों के बारे में आपने कहा है। आपको शायद इसकी खबर नहीं है कि आपके ऊपर प्रहार करते समय मैंने खुद अपने ऊपर कितना प्रहार किया होगा! और आपके सामने यह मांग न रखूं तो फिर किसके सामने रखूं! क्या विद्यार्थियों से आशा करूं? श्रीनिवास शास्त्री के आगे यह मांग रखूं? चरखे में जिनका विश्वास नहीं, जो चरखे की टीका-टिप्पणी करते हैं, उनसे कैसे क्या आशा रखी जाय? अवन्तिकाबहन और श्रीमती खांडिलकर अपने हाथ के कते सूत के पचे मेरे पास हर चरखा द्वादशी को भेजती हैं। वही

पंचा मैं आज पहने हुए हूं। खाडिलकर ने चरखे के साथ गीता के इस श्लोक का सम्बन्ध बिठाया था, 'नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति, प्रत्यवायो न विद्यते'। इसे मैं अक्षरशः मानता हूं। एक बात और। भूल सुधारने की बात आप करते हैं, अवश्य सुधारिये, पर मेरे लिए कुछ न कीजिये। श्रद्धा आपके अन्दर उत्पन्न होनी चाहिए। अगर वह मुझसे उधार ली गई श्रद्धा होगी तो उससे कुछ भी बनने का नहीं।"

: १७ :

फिर भी वह गृहस्वामिनी है

उन दिनों सेगांव में गांधीजी ने एक साधु को अपने पास टिका लिया था। प्रार्थना में वह अपने रचे हुए भजन गाते थे। गांव में उनके अनेक अनुयायी थे। वे उनका दर्शन करने आते, लेकिन उन्हें बड़ा आश्चर्य होता कि साधु बाबा न केवल महात्मा गांधी के साथ रहते हैं, बल्कि उनकी झोंपड़ी में एक हरिजन लड़के के हाथ का पकाया खाना भी खाते हैं। वे लोग उनसे बहस करते। साधु बाबा जब उनकी शंकाओं का निवारण न कर पाते तो गांधीजी से पूछते। उनके एक भक्त ने कहा, "महात्माजी, अस्पृश्यता तो पशु-पक्षी तक मानते हैं, पर आप उसे मनुष्यों से भी दूर करना चाहते हैं। जैसे गधा कभी कुत्ते के साथ नहीं रहेगा, कौआ कबूतरों के अंडों को नहीं छुएगा। प्रत्येक योनि का अपना-अपना मण्डल है, अपना-अपना स्थान है और ईश्वर की सृष्टि

में प्रत्येक का अपना-अपना उपयोग भी है।"

गांधीजी बोले, "किन्तु गायों, गधों और कुत्तों को अगर आप साथ-साथ खिलायें और रखें तो वे बड़ी खुशी से एक ही जगह बने रहेंगे। फिर आप क्या यह मानते हैं कि जो अन्तर गधे और कुत्ते के बीच में है वही आपके और एक अस्पृश्य के बीच में है?"

यह सुनकर वह भक्त निरुत्तर हो उठे, लेकिन उन्हें कुछ तो कहना ही था, बोले, "क्या हम जंगली खूंखार जानवरों से नहीं बचा करते?"

गांधीजी बोले, "इन जानवरों से क्या हम इसलिए बचते हैं कि ये अस्पृश्य हैं? इनसे तो हम डरते हैं। अगर हम इन्हें पाल सकें तो ये भी हमसे हिल-मिल जायंगे। जो इन्हें पाल लेता है, उसको चमत्कारी कहा जाता है।"

लेकिन वे भाई अपनी जिद पर अड़े हुए थे, बोले, "हम सुअरों को इस कारण थोड़े ही नहीं छूते हैं कि हम उनसे डरते हैं, बल्कि इसलिए नहीं छूते कि वे गन्दे होते हैं।"

गांधीजी बोले, "आप अपने घरों की स्त्रियों के विषय में क्या कहेंगे? क्या वे आपके बच्चों का मलमूत्र साफ नहीं करतीं? फिर भी वे गृहस्वामिनी हैं।"

इस प्रकार गांधीजी बराबर उसके तर्क को काटकर समझाते रहे। जब उस व्यक्ति को और कुछ न सूझा तो उसने कहा, "पर आप तो यह भी चाहते हैं कि हम उन्हें अपने मंदिरों में भी ले जायं। गंदा काम करनेवाले लोगों को हम अपने मन्दिरों में कैसे ले जा सकते हैं?"

गांधीजी ने परम शान्ति से उत्तर दिया, "भाई, मैंने यह कब कहा कि मैले की टोकरियां सिर पर रखे हुए मन्दिर में घुसते हुए चले जाओ! मैंने क्या यह नहीं कहा है कि स्नान और स्वच्छता संबंधी जो शर्तें दूसरे हिन्दुओं के लिए रखी गई हैं, उन्हें पूरा करके ही हरिजन मन्दिरों में आयेंगे। आपके तर्क के अनुसार तो चीर-फाड़ करनेवाला एक भी डाक्टर और दायी हमारे मन्दिरों में जाने के लिए योग्य नहीं हैं।"

गांधीजी के धीरज का कोई अन्त नहीं था। बिना उत्तेजित हुए वह घंटों तक इस संबंध में शंका समाधान करने के लिए तैयार रहते थे।

: १८ :

उनका सबसे बड़ा गुण उनका महान चारित्रिक सौंदर्य था

उन दिनों गांधीजी बंगलौर के पास नन्दी-पर्वत पर स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। एक दिन तीसरे पहर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर रामन की पत्नी साइंस इंस्टीट्यूट के कुछ विद्यार्थियों के साथ उनसे मिलने के लिए आईं। विद्यार्थी गांधीजी को अपना इंस्टीट्यूट दिखाना चाहते थे। अपने पक्ष में वकालत करवाने के लिए ही वे श्रीमती-रामन को साथ ले आये थे। लेकिन श्रीमती रामन गांधीजी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में इतनी चिन्तित थीं कि वह उन्हें इंस्टीट्यूट देखने जाने के लिए विवश नहीं कर पा रही

थीं। लेकिन जिस क्षण गांधीजी को यह मालूम हुआ कि वह साइंस इंस्टीट्यूट है तो वह स्वयं ही तुरन्त वहां जाने के लिए तैयार हो गये। बोले, "अगर आप लोग साइंस इंस्टीट्यूट की बात कर रहे हैं तब तो मैं वहां जरूर चलूंगा, बशर्ते कि सर रामन मुझे वहां कोई वैज्ञानिक चमत्कार दिखाने की कृपा करें।"

इसके बाद वह श्रीमती रामन से बोले, "मैंने आपके पतिदेव से आपकी बहुत प्रशंसा सुनी है। जब वह अपने विज्ञान मंथन में तल्लीन रहते हैं तब आप मानव-सेवा सम्बन्धी हर तरह की प्रवृत्ति के लिए समय निकाल लेती हैं।"

सभी उपस्थित व्यक्तियों ने इस बात का समर्थन किया, लेकिन बेचारी श्रीमती रामन तो लज्जा से लाल हो उठीं। विनम्र स्वर में बोलीं, "जितना मुझे करना चाहिए उतना तो मैं नहीं करती। खादी, हरिजन-कार्य, समाज-सेवा और इसी तरह के कामों में मुझे दिलचस्पी है। महात्माजी, यह तो आप जानते ही हैं कि चर्खा मैं कई साल से चलाती हूं। कोई पन्द्रह साल पहले मैंने अपने हाथ का काता हुआ सूत आपके पास भेजा था और स्वर्गीय मगनलाल गांधी ने उसकी खादी बनवाकर मेरे पास भेज दी थी। मगर मेरे पतिदेव का उन दिनों चरखे में विश्वास नहीं था। वह मेरा चरखा छीन लेते और उसे तोड़-मरोड़ डालते। पर मुझे खुशी है कि मेरे जीवनकाल में ही आज वह दिन देखने को मिला जब वह मेरे चरखे का मजाक नहीं उड़ाते। वह भी विश्वास करने लगे हैं।"

गांधीजी ने कहा, "मुझे बड़ी खुशी हुई। लेकिन मैं तो आपसे

अपना कुछ काम लेना चाहता हूं। क्या आप कभी स्वर्गीय कमला नेहरू से मिली थीं?"

श्रीमती रामन ने उत्तर दिया, "महात्माजी, एक या दो बार मैं उनसे मिली थी। परन्तु माता स्वरूपरानी नेहरू को मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूं।"

महात्माजी बोले, "पर यह तो आप जानती ही हैं कि कमला कितनी भली थीं। देश की सेवा में उन्होंने अपने को किस तरह खपा दिया था। पर उनके जिस गुण का मैं सबसे अधिक आदर करता हूं वह उनका राजनैतिक कार्य नहीं, किन्तु उनका महान चारित्रिक सौंदर्य था। उनका वह नैतिक सौंदर्य मेरी राय में प्रत्येक स्त्री-पुरुष को जानना चाहिए।"

श्रीमती रामन ने कहा, "जी, मैं उनकी सेवाओं और उनके नैतिक सौंदर्य के विषय में जानती हूं।"

गांधीजी बोले, "तब तो आपको अवश्य उनके स्मारक के लिए कुछ पैसा इकट्ठा करने में हमारा हाथ बंटाना चाहिए।"

श्रीमती रामन बोलीं, "जरूर महात्माजी, कलकत्ता में देशबन्धु दास की मृत्यु के बाद आप कैसे जम कर बैठ गये थे और आठ लाख रुपये आपने इकट्ठे कर लिये थे, यह मुझे मालूम है। यहां भी आप ऐसा करें तो काफी रुपया इकट्ठा कर सकते हैं।"

गांधीजी ने कहा, "उन दिनों जितना समय मेरे पास था उतना अब नहीं है। पर आप यहां अपना पूरा प्रभाव डाल सकती हैं और जितना रुपया इकट्ठा करें उतना कर सकती हैं।"

श्रीमती रामन खुशी-खुशी इस बात के लिए राजी हो गईं।

मुझे विलायती औजार नहीं चाहिए

सन् १९३६ में गांधीजी ने श्री राधाकृष्ण से कहा, "मुझे कुछ बढ़ई के औजार चाहिए। भिजवा सकोगे क्या?"

राधाकृष्ण ने उत्तर दिया, "हां, जरूर। यहां के बढ़ई के लिए चाहिए क्या?"

गांधीजी बोले, "नहीं, खुद अपने लिए। यहां के बढ़ई तो सादी-सी चीज को भी ठीक तरह से बनाना नहीं जानते। मैं कभी-कभी उन्हें सबक देना चाहता हूं। जिन चीजों की मुझे जरूरत है उन्हें तुम जरा नोट कर लो।"

राधाकृष्ण ने उन सब औजारों के नाम लिख लिये। एक बसूला, एक रन्दा, एक बरमी, एक हथौड़ा, एक आरी और एक कुल्हाड़ी। गांधीजी बोले, शायद तुम्हें यहां की बनी बरमी न मिले। पर मेरा खयाल है कि बाकी और औजार तो तुम्हें यहां के या हिंदुस्तान के बने ही मिल सकते हैं।"

यह सुन कर राधाकृष्ण चकित रह गये। बोले, "तो क्या आप ये सब औजार स्वदेशी चाहते हैं? तब तो इनका मिलना असम्भव है।"

गांधीजी बोले, "तो सूची फाड़कर फेंक दो। मुझे विलायती औजार नहीं चाहिए।"

और फिर महादेव देसाई की ओर देख कर बोले, "महादेव, पता तो लगाओ कि हिन्दुस्तान के बने ये सब औजार कहीं मिल सकते हैं या नहीं!"

मालूम हुआ कि क्यों खद्दर पहनना है ?

गांधीजी एक बार स्वास्थ्य लाभ के लिए बेंगलूर के पास नन्दी पर्वत पर जाकर ठहरे थे। उस समय एक बालिका विद्यालय की लड़कियां उनसे मिलने आई थीं। उनसे विनोद करते हुए गांधीजी ने पूछा, "क्या तुम्हें मालूम है कि खद्दर क्या चीज है? क्या वह एक सुन्दर चिड़िया है या कोई सुन्दर खिलौना है?"

गांधीजी के इस विनोद पर वे लड़कियां हँस पड़ीं। एक ने कहा, "खद्दर माने कपड़ा।"

सहसा विनोद परीक्षा में बदल गया। गांधीजी ने पूछा, "कैसा कपड़ा?"

लड़कियां यह रहस्य नहीं जानती थीं। कई क्षण मौन रहीं। फिर एक लड़की ने कहा, "खुरदरा कपड़ा।"

उन्हें खद्दर का अर्थ समझाते हुए गांधीजी बोले, "हाथ के सूत का हाथ से बुना कपड़ा खद्दर कहलाता है। अच्छा, बताओ इसे क्यों पहनना चाहिए?"

लड़कियों ने अपनी-अपनी समझ से उत्तर देने शुरू किये। किसी ने कहा, "यह टिकाऊ है।" किसी ने कहा, "यह जल्दी साफ हो जाता है।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो ठीक है, लेकिन इसे क्यों पहनना चाहिए, इसका एक और ही कारण है। क्या तुम जानती हो,

खद्दर का सूत कौन कातता है ? अमीर लोग ? नहीं, इसे कातते हैं गरीब लोग । हमारे देश के लोग बहुत गरीब हैं । क्या तुम कभी देहातों में गई हो ? जाओ तो देखोगी कि उन्हें पेट भर खाने को भी नहीं मिलता । दूध भी नहीं मिलता । ऐसे ही लोग इसे कातते हैं । उससे उन्हें एक दमड़ी भी मिले तो उनके लिए सौभाग्य की बात है । अगर तुम खद्दर खरीदोगी तो वही दमड़ी उन्हें मिलेगी । उससे वे नमक, मिर्च या गुड़ आदि खरीदेंगे । तो मालूम हुआ कि क्यों खद्दर पहनना है ?"

: २१ :

दोष-शून्य केवल परमात्मा है

बिना समय लिये गांधीजी से मिलना प्रायः असम्भव था । लेकिन बच्चों के लिए ऐसा कोई नियम नहीं था । ऐसे ही एक दिन बहुत से बच्चे आये और उन्हें घेर लिया । बच्चे तो मेंढकों जैसे होते हैं । उन्हें अनुशासन में रखना बड़ा कठिन होता है । गांधीजी ने क्या किया ? उनसे पूछा, "क्या तुमको गिनना आता है ? जरा बांई ओर से दांई ओर गिनो तो तुम लोग कितने हो ?"

बच्चों को कुछ अनोखा-सा लगा । लेकिन उन्होंने गिनना शुरू किया । पहली बार गिनने में कष्ट हुआ, लेकिन दूसरी-तीसरी बार करते-करते वे बड़ी आसानी से गिनना सीख गये । लेकिन खेल यहीं समाप्त नहीं हुआ । गांधीजी ने उनसे पूछा,

"सम-विषम क्या होता है ? जानते हो ?"

केवल एक लड़का ही सम-विषम का अर्थ जानता था । गांधीजी ने सबको अच्छी तरह समझाया और फिर कहा, "अच्छा, सब विषम लड़के जहां हैं वहीं खड़े रहें और जो सम हैं वे एक कदम आगे आ जायं।"

पहले तो बच्चे अचकचाए, लेकिन बाद में दो कतारें बन गईं। एक सात लड़कों की दूसरी छः लड़कों की, क्योंकि कुल तेरह लड़के थे।

अब आगे का पाठ शुरू हुआ। गांधीजी ने पूछा, "जो बच्चे तमाखू पीते हैं, वे अपना हाथ उठा दें। छः बच्चों ने हाथ उठाये। गांधीजी ने उनको तमाखू पीने की हानियां बताई और फिर पूछा, "क्या तुम्हारे अध्यापक अच्छे हैं? तुम्हें अच्छी तरह पढ़ाते हैं ? मारते-पीटते तो नहीं ?"

बच्चों ने एक स्वर में अपने शिक्षकों की प्रशंसा की। गांधीजी बोले, "क्या वे तुम्हें कभी नहीं मारते ?"

सभी बच्चों ने एक स्वर से कहा, "कभी नहीं।"

गांधीजी बोले, "यह कैसे हो सकता है ? क्या तुमने कभी ऐसे आदमी को देखा है, जिसमें जरा भी खोट न हो ?"

इस बार लड़के सहसा कोई उत्तर नहीं दे सके। लेकिन दो मिनट बाद उनका जो नेता था वह मुस्कराया और गांधीजी की ओर इशारा करके बोला, "हां, देखा है।"

उस बच्चे को अपने बारे में यह कहते देखकर गांधीजी चकित रह गये। बोले, "न बाबा, यदि मैं बिलकुल अच्छा होता तो सरकार मुझे बार-बार जेल क्यों भेजती।"

इस बार बच्चों के चकित होने की बारी थी। वे कुछ जवाब न दे सके। गांधीजी ने कहा, "देखो बच्चो, मनुष्यों में कोई भी बिलकुल अच्छा नहीं है। दोष-शून्य केवल परमात्मा है। हम सबको उसके जैसा बनने का प्रयत्न करना चाहिए। सत्य ही उसका मार्ग है। कितनी ही बड़ी गलती हम करें, लेकिन बोले सदा सच। सच बोलनेवाले को कभी दुःख नहीं होता।"

: २२ :

मैं आपको कन्यादान दे रहा हूं

उस दिन गांधीजी के सान्निध्य में एक अनोखा विवाह हुआ। वर-वधू दोनों दक्षिण भारत के थे। श्री वेलायुधन त्रिवांकुर के थे और श्रीमती दाक्षायिणी कोचीन की थीं। दोनों सुशिक्षित थे और धंधे से लगे थे। दोनों थे तो हरिजन, लेकिन अलग-अलग जाति के थे। इसलिए शादी करना आसान काम नहीं था। इन झंझटों से बचने के लिए ही श्री वेलायुधन ने गांधीजी की शरण ली। गांधीजी बोले, "मैं तो केवल धार्मिक क्रिया करा दूंगा।"

अब प्रश्न यह था कि ब्राह्मण कहां से आये ? सहसा गांधीजी को श्री परचुरे शास्त्री की याद आई। वे कुष्ठ-रोगी थे, परन्तु थे परम विद्वान। हरिभजन और संस्कृत अध्यापन में अपना समय बिताते थे। उन्होंने यह विवाह कराना स्वीकार कर लिया।

६ सितम्बर, १९४० का दिन विवाह के लिए निश्चित

हुआ। शास्त्रीजी की कुटिया के सामने वेदी बनाई गई। वर-वधू दोनों वहीं हाजिर हो गये, लेकिन उन्हें तो अंग्रेजी के अतिरिक्त और कोई भाषा आती नहीं थी। तब शास्त्रीजी अपनी प्रत्येक बात का अंग्रेजी में उलथा करके समझाते थे। संस्कृत के श्लोक वह बहुत धीरे-धीरे बोलते। एक-एक शब्द करके बोलते। गांधीजी उनको दोहराते। चूंकि कन्यादान तो उन्हींको करना था, उन्होंने श्री वेलायुधन से कहा, "मैं संस्कृत में क्या बोलता हूं, आप समझते हैं? मैं आपको कन्यादान दे रहा हूं। मैं दाक्षायिणी को सेवा के लिए और धर्म-रक्षा के लिए आपको सौंप रहा हूं। इसे आप याद रखेंगे न?"

इस प्रकार यह अनोखा विवाह समाप्त हुआ।

गांधीजी भी एक नई लग्न-विधि का आविष्कार करके बहुत प्रसन्न थे। न कोई आडम्बर, न समय की अधिकता और कैसी गम्भीरता से यह काम संपन्न हुआ!

: २३ :

जब वे तुम्हारे धर्म के रास्ते में बाधा बनें तो...

उस दिन महिलाओं की एक सभा में गांधीजी का जाना हुआ। वे महिलाएं आन्ध्र के प्राचीन क्षत्री राजाओं के परिवार से थीं। वे सभी पर्दा करती थीं और उस दिन पहली बार ही किसी सभा में आई थीं। उन्हींके समाज का कोई व्यक्ति चर्खे

लेकर उनके पास गया था और उनमें जो सबसे धनी थी उसने प्रतिज्ञा की कि मैं आज से चर्खा चलाऊंगी और खादी पहनूंगी।

यह सब जानकर गांधीजी ने उससे पूछा, "मगर तुम तो विवाहित हो।"

उन बहन ने उत्तर दिया, "जी हां।"

गांधीजी बोले, "क्या तुम्हारे पति खादी पहनते हैं ?"

वह बहन लज्जित हो आई। बोली, "नहीं।"

तब गांधीजी ने पूछा, "क्या वे तुम्हें खादी पहनने देंगे ?"

वह बहन बोली, "वे जो चाहेंगे, वही मैं करूंगी।"

गांधीजी मुस्कराये, "तब तुम्हारी प्रतिज्ञा का क्या होगा ?"

अब तो वह बहन बड़ी परेशानी में पड़ गई। कुछ उत्तर देते न बन पड़ा। गांधीजी बोले, "क्या तुम अपने पति पर प्रभाव नहीं डाल सकतीं ?"

वह बहन अब भी मौन रही। गांधीजी ने कहा, "क्या तुम जानती हो, सीता ने राम का हुक्म तोड़ा था।"

वह बहन इस बात का अर्थ भी नहीं समझ सकी। तब गांधीजी ने राम और सीता की कथा सुनाते हुए कहा, "राम जिस समय बनवास जा रहे थे, उन्होंने सीता को अपने साथ आने से मना किया था, लेकिन क्या सीता ने राम की बात मानी थी ? नहीं मानी थी, क्योंकि वह जानती थीं कि राम के पीछे जाना उनका धर्म है। इसी प्रकार तुम भी अपने पति में श्रद्धा रखो, उनसे प्रेम करो, लेकिन जब वे तुम्हारे धर्म के रास्ते में बाधा बनें तो उनकी बात मानने से इंकार कर दो।"

वह बहन इस बात से प्रभावित हुई।

तुम खादी पहनोगी न ?

एक दिन तमिल और कर्नाटक प्रदेश की कई बहनें गांधी-जी से मिलने के लिए आईं। कर्नाटक की बहनों में एक प्रौढ़ा थी और एक सोलह साल की लड़की। चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने प्रौढ़ा का परिचय कराते हुए गांधीजी से कहा, "यह वही बहन हैं, जिनके पति ने स्वयं आजीवन सूत कातने और एक हजार कातनेवालों की सेना इकट्ठी करने की प्रतिज्ञा ली है।"

वह सज्जन अपनी एक नोटबुक गांधीजी के पास छोड़ गये थे। चाहते थे कि गांधीजी उनकी प्रतिज्ञा का हिन्दी अनुवाद अपने हाथ से अपने शब्दों में लिख दें। वह प्रौढ़ा वही नोटबुक लेने के लिए आई थी। गांधीजी बोले, "जिसपर कातने का इतना रंग चढ़ा हो, भला उसकी पत्नी खादी क्यों न पहने ? जबतक तुम खादी पहनकर नहीं आतीं तबतक नोटबुक नहीं मिल सकती।"

वह बहन बोली, "अच्छी बात है, मैं खादी पहनकर ही नोटबुक लेने के लिए आऊंगी।"

अब गांधीजी उस लड़की की ओर मुड़े और पूछा, "क्यों, तुम्हारा क्या विचार है ? तुम खादी पहनोगी न ?"

लड़की ने उत्तर दिया, "अब पहनूंगी।"

यही बात गांधीजी ने तमिल बहनों से कही। वे भी खादी पहनने के लिए तैयार हो गईं। अब प्रश्न यह था कि पहले कौन

पहनेगा ? दोनों प्रान्त की बहनें एक-दूसरे को हराने की बात कहने लगीं। इसी बीच कुछ और व्यक्ति आ गये। गांधीजी उनसे बातचीत पूरी कर भी न पाये थे कि क्या देखते हैं, कर्नाटक प्रदेश की दोनों बहनें खादी के कपड़े पहने हुए उनके सामने उपस्थित हैं। उन्हें देखकर गांधीजी चकित रह गये। बोले, "तुमने तो गजब कर दिया! अब तो मुझे तुम्हारे पति के लिए उस नोट बुक में अभी लिखकर देना पड़ेगा।"

और सब काम छोड़कर उन्होंने तुरन्त अनुवाद किया। नोट-बुक में लिखा। साथ में एक पत्र भी लिखा, जिसमें उनकी पत्नी की प्रशंसा की। वह बोली, "आपकी इस कृपा के लिए अनुगृहीत हूं। आपके सामने संकल्प करती हूं कि आज से खादी के अतिरिक्त और कुछ नहीं पहनूंगी।"

गांधीजी ने अब लड़की की ओर देखा। कहा, "तूने भारी हिम्मत दिखाई है। तुझे तो दत्तक पुत्री बना लेने को जी चाहता है। अच्छा, अब अपनी शाला में खादी का प्रचार करेगी न ?"

दृढ़ स्वर में उस लड़की ने कहा, "अवश्य करूंगी।"

गांधीजी उन्हें विदा देते हुए बोले, "अच्छा बहनो, फिर आना।"

आपने देश के लिए बहुत काम किया है

गांधीजी जिस समय मद्रास में श्री जी० ए० नटेसन के पास ठहरे हुए थे, उस समय वह सुप्रसिद्ध देश-भक्त और पत्रकार जी० सुब्रह्मण्य ऐयर से मिलने के लिए उनके घर गये। श्री ऐयर बहुत बीमार थे, लेकिन इसके बावजूद वह देश के लिए कुछ-न-कुछ करते ही रहते थे। गांधीजी के आने से वह बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "आप जो कुछ कर रहे हैं, उसपर देश गर्व कर सकता है। लेकिन मुझे देखिये, इस बीमारी ने मुझे अपंग बना दिया है। मैं देश के कोई काम नहीं आ सकता।"

और अपनी इस दयनीय दशा का वर्णन करते हुए ऐयर महोदय फूट-फूटकर रोने लगे। गांधीजी उन्हें सांत्वना देते हुए बोले, "आपने देश के लिए बहुत काम किया है। आपको लज्जित होने की कोई आवश्यकता नहीं।"

यह कहते हुए वह उनके घावों को साफ करने लगे।

उस समय श्री नटेसन के साथ श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री भी उपस्थित थे। इस अद्भुत दृश्य को देखकर उनकी आंखें भर आईं।

: २६ :

अंग्रेजी क्यों, हिन्दी क्यों नहीं ?

गांधीजी उन दिनों पूना में थे। फैजपुर-कांग्रेस होकर चुकी थी। उस समय हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्रकुमार उनसे मिलने के लिए वहां पहुंचे। प्रेमचन्द-स्मारक के संबंध में सलाह-मशविरा करना था। जैनेन्द्रजी के मन में एक अंग्रेजी साप्ताहिक निकालने की वासना जग उठी। उससे पहले भी वह ऐसा सोच चुके थे और गांधीजी के सामने अंग्रेजी पत्र निकालने का विचार भी रख चुके थे। उस समय गांधीजी ने उन्हें निरुत्साहित ही किया था।

इस बार फिर जैनेन्द्रजी की यह वासना गांधीजी के सामने आई तो वह बोले, "अंग्रेजी क्यों, हिन्दी क्यों नहीं ?"

जैनेन्द्रजी ने कहा, "अंग्रेजी में बात उनतक पहुंचती है, जिनतक उसे पहुंचना चाहिए।"

गांधीजी तुरन्त बोले, "इसीलिए तो कहता हूं, अंग्रेजी में नहीं। जरूरी समझो तो हिन्दी में निकालो। बात जिनतक पहुंचनी चाहिए, हिन्दी में ही पहुंचेगी। अंग्रेजीवालों को जरूरत होगी तो वे देखेंगे।"

यह सुनकर जैनेन्द्रजी ने कहा, "तो आपकी अनुमति नहीं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मेरी तो राय है, अनुमति अपने अन्दर से ले लो। मैंने तो अपनी बात कह दी। निर्णय के लिए तुम स्वयं हो।"

जिसने अध्यात्म में प्रगति की है, वह बीमार नहीं पड़ता

गांधीजी उन दिनों आग़ाखां-महल में नज़रबन्द थे। सन् १९४४ के अप्रेल महीने में उन्हें मलेरिया ने आ घेरा। तब उनके मन की कैसी दयाजनक स्थिति हो उठी थी, यह वही जानते हैं, जो उस समय उनके पास थे। वह मानते थे कि मनुष्य अपने पाप के कारण बीमार पड़ता है। जिसका अपने मन पर पूरा काबू है, वह बीमार नहीं पड़ सकता।

उस दिन जब वह अपने मन की इस स्थिति की चर्चा कर रहे थे, डाक्टर सुशीला नैयर ने कहा, "यह तो मलेरिया के कारण आई हुई कमजोरी और कुनैन का असर है। थोड़े दिनों में यह सब दूर हो जायगा। शरीर में शक्ति आयगी तो उदासी भी चली जायगी।"

गांधीजी बोले, "शरीर में शक्ति भले ही आ जाय, मगर पहले जैसा आत्म-विश्वास कैसे वापस आ सकता है?"

सुशीला नैयर ने उत्तर दिया, "मलेरिया तो आपको पहले भी आ चुका है। उससे तो आप निराश नहीं हुए। उसके बाद भी तो आपने बड़े-बड़े काम किये हैं।"

गांधीजी बोले, "काम तो अब भी करूंगा। चम्पारन में मलेरिया आया था, तबसे लेकर आज २५ वर्षों में क्या मैंने कुछ भी प्रगति नहीं की! मैं मानता था कि मैं उस स्थिति से

बहुत आगे बढ़ गया हूं, परन्तु अब मुझे शंका पैदा हो गई है।"

श्री प्यारेलाल भी वहीं थे। वह बोले, "आध्यात्मिक दृष्टि से तो आप आगे बढ़े हैं, पर समय बीतने के साथ-साथ शरीर तो जीर्ण होता ही है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, शरीर दुर्बल भले हो, लेकिन जिसने अध्यात्म में प्रगति की है, वह बीमार नहीं पड़ता। उसकी सब शक्तियां और स्वास्थ्य अन्त तक कायम रहते हैं।"

प्यारेलालजी बोले, "मैं आपकी बात समझता हूं। यह तो एक तरह की सिद्धावस्था की बात हुई। उसतक आप नहीं पहुंचे हैं।"

गांधीजी ने कहा, "नहीं, सिद्धावस्था की भी बात नहीं है। हां, जहांतक मैं अपनेको पहुंचा हुआ मानता था वहांतक भी नहीं पहुंच पाया हूं।"

डा० सुशीला नैयर बोलीं, "आप किसी भी पहुंचे हुए, अत्यन्त संयमी, पूर्ण स्वस्थ मनवाले व्यक्ति को लाइये। मैं उसे मलेरिया का बुखार चढ़ा देने का ठेका लेती हूं। एक बार नहीं तो दस बार मच्छरों के काटने से उसे मलेरिया होगा, फिर वह कुनैन से उतर भी जायगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "इस बुद्धिवाद से तू मेरी मान्यता को हिला नहीं सकेगी। मैं जानता हूं कि अपनी बात सिद्ध करने के लिए मेरे पास सबूत नहीं है, तो भी मेरी वर्षों की यह मान्यता है कि जिसका मन पूर्णतः स्वस्थ यानी स्वच्छ है, उसका शरीर स्वस्थ रहना ही चाहिए।"

जान पड़ता है, आप दरोगाजी से डरते हैं

यह घटना उस समय की है जब गांधीजी ने निलहे गोरों के विरुद्ध चम्पारन में सत्याग्रह-आन्दोलन का श्रीगणेश किया था। वह घूम-घूमकर किसानों के बयान लिख रहे थे। उनके साथ बहुत-से स्थानीय व्यक्ति भी थे। झुण्ड बांध-बांधकर किसान लोग आते थे और अपना-अपना हाल सुनाते थे। ये लोग उनसे खूब जिरह करते और सच्ची बातें लिखते थे।

इन्हीं व्यक्तियों में थे एक वकील धरनीधरबाबू। वह भी किसानों के साथ अलग बैठकर बयान लिखते थे। एक दिन क्या हुआ कि उनके पास पुलिस का एक दरोगा आ बैठा। ऐसा करने के लिए उसे सरकार की ओर से आज्ञा मिली थी, लेकिन धरनी-धरबाबू को यह सब अच्छा नहीं लगा। वह उठकर दूसरी जगह जा बैठे। दरोगा वहां भी आ गया। तब वकीलसाहब वहां से उठ-कर तीसरी जगह जा बैठे,लेकिन दरोगासाहब कब माननेवाले थे! जहां भी वकीलसाहब जाते, छाया की तरह वहीं वह उपस्थित दिखाई देता। आखिर वकीलसाहब के संयम का बांध टूट गया। उन्होंने दरोगासाहब को झिड़कते हुए कहा, "आप मेरे पीछे क्यों लगे हुए हैं?"

दरोगासाहब ने उनसे तो कुछ नहीं कहा, लेकिन गांधीजी से उसने इस बात की शिकायत की। तब गांधीजी ने धरनीधर-बाबू को बुला भेजा और पूछा, "आपके साथ दरोगाजी ही बैठते

हैं या और भी कोई ?"

घरनीधरबाबू ने उत्तर दिया, "किसान लोग तो बैठते ही हैं।"

गांधीजी बोले, "जब इतने किसानों के बैठने से आपकी कोई हानि नहीं होती तो एक और आदमी के आ बैठने से आप क्यों घबराते हैं ? आप इनमें भेद क्यों करते हैं ? ओह, जान पड़ता है, आप दरोगाजी से डरते हैं। उस बिचारे को भी किसानों के साथ बैठने दीजिये।"

गांधीजी का यह विनोद सुनकर किसान तो जैसे भय से मुक्त हो गये, लेकिन दरोगाजी को काटो तो खून नहीं। गांधीजी ने उन्हें मामूली किसानों के बराबर बना दिया था।

उसके बाद वकीलसाहब ने उन्हें अपने पास बैठने से कभी नहीं रोका।

: २९ :

मेरे लिए अगला कदम ही काफी है

उस दिन १९४२ के अगस्त मास की ७ तारीख थी। सवेरे का समय था। गांधीजी सैर करने के लिए निकले। कांग्रेस की कार्यकारिणी सुप्रसिद्ध अगस्त-प्रस्ताव पास कर चुकी थी और अब वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा स्वीकृत किया जाना शेष था। सारे वातावरण में एक प्रकार की संयत उत्तेजना फैली हुई थी। लोगों का ऐसा विचार था कि उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत

होते ही देश में बहुत बड़ी घटनाएं घट सकती हैं।

सैर के समय श्री घनश्यामदास बिड़ला उनके साथ थे। उनके मन में भावी परिणामों की आशंका से भली-बुरी बातें उठ रही थीं। लेकिन गांधीजी वैसे ही शान्त मुद्रा धारण किये हुए थे। उनके चेहरे से किसी भी प्रकार की अस्वाभाविकता या उत्तेजना का आभास तक नहीं मिल रहा था। बिड़लाजी ने पूछा, "क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा अगस्त-प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद कांग्रेस किसी बड़े आन्दोलन का श्रीगणेश करेगी?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं, बिल्कुल नहीं। हम कोई भी कदम उठाने में जल्दबाजी करना नहीं चाहते। अभी वायसराय से मुझे मिलना है। वह मेरे मित्र हैं और प्रस्ताव की व्याख्या करने में वह जल्दबाजी से काम नहीं लेंगे। जबतक भारत स्वदेश का स्वामी नहीं बन जाता, तबतक विदेशी आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए आवश्यक उत्साह उसमें उत्पन्न हो ही नहीं सकता। वायसराय को अपना यह दृष्टिकोण समझाने का मैं प्रयत्न करूंगा।"

बिड़लाजी ने कहा, "लेकिन मान लीजिये, सरकार अपनी बात पर अड़ी रहती है, तो फिर आप क्या करेंगे?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तब तो फिर किसी-न-किसी प्रकार के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आरम्भ करना ही पड़ेगा। अबतक इस सम्बन्ध में मैंने कोई विचार नहीं किया है। पहले से योजनाएं बनाकर तैयार रखने की मेरी आदत नहीं है। मेरे लिए अगला कदम ही काफी है। और वह है वायसराय से भेंट

करना। यदि उन्हें कायल करने में मैं असमर्थ रहा, तो हो सकता है कि नमक सत्याग्रह की तरह कोई आन्दोलन हम आरम्भ कर दें। मैं आहिस्ता कदम चलाना चाहता हूं। संकट में फंसे हुए को और अधिक संकट में ढकेलने में कोई मजा नहीं।"

: ३० :

ये हरिजन छात्र भोजन कहां करते हैं?

जनवरी, १९३४ में बिहार में भयंकर भूकम्प आया था। उस समय गांधीजी वहां गये थे। तभी मुंगेर भी उनका जाना हुआ। वहां हरिजन-आश्रम में कुछ मिनटों के लिए उन्होंने जाने का समय निकाल ही लिया। उन दिनों वह हरिजनों के लिए ही काम कर रहे थे।

आश्रम में कई हरिजन छात्र थे। इधर-उधर की बातें करते हुए गांधीजी ने पूछा, "ये हरिजन छात्र भोजन कहां करते हैं?"

एक मित्र ने उत्तर दिया, "बाजार में जो होटल है, वहीं खाते हैं।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "वहां क्या इन्हें सभीके साथ खाने की सुविधा है?"

इस बार मंत्रीजी ने उत्तर दिया, "जीनहीं, ऐसी कोई सुविधा नहीं। इनके लिए अलग प्रबन्ध किया जाता है।"

यह सुनकर गांधीजी बोले, "आपको शीघ्र ही अपना प्रबन्ध कर लेना चाहिए, नहीं तो इन छात्रों में हीन भावना बढ़ जायगी।"

: ३१ :

सत्य के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं होता

गांधीजी गोपनीयता में विश्वास नहीं रखते थे। सन् १९२६ की बात है। तब वह साबरमती-ग्राश्रम में रहते थे। उन्हीं दिनों कुमारी म्यूरियल लेस्टर वहां रहने के लिए आई। गांधीजी के कमरे के आगे जो बरामदा था, प्राय: उसके नीचे वह बैठती थीं। वहीं भोजन भी करती थीं और वहीं से होकर अभ्यागत लोग गांधीजी के कमरे में जाते थे। नाना प्रकार की चर्चाएं चलती थीं। कुमारी लेस्टर सबकुछ सुनती थीं। शुरू-शुरू में उन्हें बहुत संकोच हुआ, लेकिन एक दिन क्या हुआ कि किसीने आकर गांधीजी से कहा, "आश्रम में एक जासूस घूम रहा है।"

सहज भाव से गांधीजी ने इतना ही कहा, "जासूस को आने दो। सत्य के पास छिपाने के लिए कुछ नहीं होता।"

उस दिन के बाद कुमारी लेस्टर का संकोच दूर हो गया। अब वह सहज भाव से अपना काम करती रहीं।

इसे मैं नहीं तोड़ सकता

यह बात सन् १८९२ की है। गांधीजी उन दिनों बैरिस्टर बनने के लिए लन्दन में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। धर्म के प्रति उनका आकर्षण शुरू से ही था। लन्दन में वह ईसाई धर्म के अनेक प्रचारकों के सम्पर्क में आये। उनके प्रार्थना-समाज में भी बह गये। ऐसे ही एक दिन वह मिस्टर बेकर के प्रार्थना-समाज में गये। वहां उनका मिस्टर कोट्स नाम के एक युवक से परिचय हुआ। धीरे-धीरे वह परिचय घनिष्ठता में परिवर्तित हो गया।

मि० कोट्स शुद्ध भाववाले व्यक्ति तो थे, लेकिन थे कट्टर। उन्होंने गांधीजी का अनेक मित्रों से परिचय कराया, पढ़ने के लिए उन्हें अनेक पुस्तकें दीं। उन पुस्तकों पर वह चर्चा भी किया करते थे। वस्तुतः उनके स्नेह की कोई सीमा नहीं थी।

एक दिन मि० कोट्स ने देखा कि गांधीजी के गले में एक कण्ठी है। उसे देखकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। बोले, "यह अन्ध-विश्वास तुम जैसों को शोभा नहीं देता। लाओ, इसे मैं तोड़ दूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह कण्ठी तोड़ी नहीं जा सकती।"

मि० कोट्स ने पूछा, "क्यों?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "क्योंकि यह मेरी माताजी की प्रसादी है।"

आश्चर्य से मि० कोट्स बोले, "पर क्या इसपर तुम्हारा विश्वास है ?"

गांधीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "मैं इसका गूढ़ार्थ नहीं जानता। यह भी नहीं मानता कि यदि इसे नहीं पहनूं, तो कुछ अनिष्ट हो जायगा, परन्तु जो माला माताजी ने मुझे प्रेम-पूर्वक पहनाई है, जिसे पहनाने में उन्होंने मेरा कल्याण माना है, उसे मैं बिना प्रयोजन नहीं निकाल सकता। समय पाकर जीर्ण होकर जब वह अपने-आप टूट जायगी तब दूसरी मंगाकर पहनने का लोभ मुझे नहीं रहेगा, पर इसे मैं नहीं तोड़ सकता।"

: ३३ :

हिन्दुस्तान की मिट्टी मेरे सिर का ताज है

जापान के सुप्रसिद्ध कवि योन नागुची सन् १९३५ में भारत आये थे। स्वाभाविक ही था कि वह गांधीजी से मिलते। इसीलिए वह दिसम्बर के महीने में वर्धा पहुंचे।

आश्रम को देखकर वह प्रसन्न हुए। उन्हींके शब्दों में, "वह आश्रम एक तपोभूमि या साधना-मन्दिर था, जहां पुराने ऋषि-मुनियों या साधकों से सर्वथा भिन्न रूप में इस युग के ऋषि पर अपने राष्ट्र के जीवन की आशा या पीड़ा की समस्त हलचलों की प्रतिक्रिया होती थी।"

उस समय गांधीजी बीमार थे। इसलिए जब कवि उनसे

मिलने के लिए पहुंचे, वह दुमंजिले मकान की पक्की छत पर लगे हुए एक चौकोर तम्बू में लेटे हुए थे। सन्त की जैसी मुस्कराहट उनके मुख पर थी। टांगें टेढ़ी-सी और दुबली, पर लोह शलाका-सी मजबूत, सामने फैली हुई थीं। एक शिष्य मालिश कर रहा था। इस साधारण-से प्रभावहीन दिखाई देने-वाले व्यक्ति का उसके ऐतिहासिक उपवासों के साथ मेल बैठाना कवि नागुची के लिए कठिन हो गया। उन उपवासों ने इंग्लैण्ड की विशाल आत्मा को भी भय से थर्रा दिया था। कवि के सामने ही गांधीजी ने सूती कपड़े में कुछ लपेटकर सिर पर रखा। कवि को बड़ा आश्चर्य हुआ। पूछा, "यह क्या है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "यह गीली मिट्टी है। उनके डाक्टरों के आदेश के अनुसार उनके जैसे खून के दबाव के शिकार लोगों के लिए लाभदायक होती है।"

यह कहते हुए उपेक्षा और दार्शनिकता से मिश्रित हँसी हँसे और बोले, "मैं हिन्दुस्तान की इस मिट्टी से पैदा हुआ हूं और यही मिट्टी मेरे सिर का ताज है।"

: ३४ :

स्वच्छता तो पाली जा सकती है न !

उन दिनों गांधीजी यरवदा-जेल में नजरबन्द थे। महादेव देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल भी उनके साथ थे। १९३२ की वसन्त ऋतु थी। गांधीजी सुबह ४ बजे प्रार्थना के बाद नीबू

और शहद का पानी पीते थे।

प्रतिदिन उबलता हुआ पानी शहद और नीबू के रस पर उंडेला जाता था। जबतक पानी पीने योग्य न हो जाय, तबतक महादेवभाई और सरदार वहीं बैठे रहते थे या बैठे-बैठे पढ़ते रहते थे। एक दिन सहसा गांधीजी ने कहा, "इस पानी को एक कपड़े के टुकड़े से ढंक देना चाहिए।"

दूसरे दिन बोले, "महादेव, तुम्हें मालूम है कि यह कपड़ा ढंकने के लिए मैंने क्यों कहा ? हवा में इतने छोटे-छोटे जन्तु होते हैं कि वे पानी में उठती हुई भाप के कारण उसके अन्दर पड़ सकते हैं। कपड़ा ढंकने से उसमें बचाव हो जाता है।"

यह सुनकर सरदार सदा की तरह व्यंग्य से हँसे और बोले, "इस हद तक हमसे अहिंसा नहीं पाली जा सकती।"

उसी सहज भाव से हँसकर गांधीजी ने उत्तर दिया, "अहिंसा तो नहीं पाली जा सकती, मगर स्वच्छता तो पाली जा सकती है न !"

: ३५ :

क्या तुम भोजन करोगी ?

गांधीजी की सहज-बुद्धि कितनी जाग्रत थी और वह दूसरों का किस प्रकार ध्यान रखते थे, यह बतानेवाली घटनाओं की कोई सीमा नहीं है। उस दिन वह भोजन कर रहे थे कि वर्धा से भारती साराभाई और दूसरे व्यक्ति उनसे मिलने के लिए आ

पहुंचे। वह किसी महत्त्वपूर्ण दस्तावेज का इन्तजार कर रहे थे। साथ ही श्री जयरामदास दौलतराम दैनिक पत्रों से विशेष समाचार पढ़कर सुना रहे थे। समाचार सुनते-सुनते सहसा गांधीजी ने काठियावाड़ी लहजे में सहज भाव से भारती से पूछा, "क्या तुम भोजन करोगी ?"

भारती ने उत्तर दिया, "मैं तो भोजन करके आई हूं।"

गांधीजी बोले, "तब तो दूध, मक्खन और सब्जी सबकुछ बच जायगा।"

भारती ने कहा, "आपका मतलब है सबकुछ व्यर्थ जायगा ?"

गांधीजी बोले, "हां, व्यर्थ तो जायगा ही।"

भारती ने उत्तर दिया, "लेकिन मैंने तो आपसे यह कभी नहीं कहा था कि मैं खाना खाने के लिए आ रही हूं।"

"गांधीजी हँसे और कहा, "झूठी कहीं की! क्या तुमने कल सवेरे यह नहीं कहा था कि तुम आज सुबह वर्धा से यहां आओगी और सारा दिन ठहरोगी ?"

: ३६ :

मेरे पास तो अपना कुछ है ही नहीं

गांधीजी के पौत्र का नाम है कान्ति गांधी। प्रारम्भ में वह गांधीजी के पास सेवाग्राम में रहता था, लेकिन उसे वहां का त्यागमय जीवन रुचता नहीं था। वह महत्त्वाकांक्षी युवक था।

जानता था कि अगर यहां रहा तो उसके स्वप्न स्वप्न ही बने रहेंगे। इसलिए एक दिन बड़े संकोच के साथ उसने अपनी समस्या गांधीजी के सामने रखी। गांधीजी कहा, "तुझे यहां रह-कर देश-सेवा की दीक्षा लेनी है। केवल व्यक्तिगत मौज-शौक की बात नहीं सोचनी है।"

सहसा वह कुछ उत्तर नहीं दे सका। लेकिन उसके मन का असन्तोष कम नहीं हुआ। एक दिन उसने फिर कहा, "इस तरह खादी का गमछा लपेटे फिरना मुझे पसन्द नहीं है। यहां मेरा विकास रुक रहा है। मैं तो कालेज में जाकर पढ़ूंगा और बड़ा आदमी बनूंगा। मैं बम्बई जाना चाहता हूं।"

गांधीजी समझ गये कि यह लड़का यहां रहनेवाला नहीं है। उन्होंने कहा, "अच्छा, जाना चाहते हो तो जाओ।"

कान्ति बहुत प्रसन्न हुआ और बम्बई जाने की तैयारी करने लगा। तैयारी हो चुकी तो फिर गांधीजी के पास आया। कहा, "जाने के लिए मुझे कुछ रुपया दिला दीजिये।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "रुपया कहां से दिला दूं? आश्रम के फण्ड से तो दिया नहीं जा सकता। वह तो सार्वजनिक कामों के लिए है। तू अबतक यहां काम करता रहा, इसीलिए रसोई में खाना खाता रहा है। अब तू व्यक्तिगत जीवन जीने के लिए जा रहा है, उसके लिए यहां से पैसा नहीं मिल सकता।"

कांति ने कहा, "तो फिर मैं बम्बई कैसे पहुंचूंगा? वहां जाकर मैं अपनी व्यवस्था कर लूंगा। लेकिन रेल का किराया तो देना ही होगा। बीस रुपये ही दिला दीजिये।"

गांधीजी ने पूर्ववत: उत्तर दिया, "आश्रम के धन से एक पाई

भी नहीं दिला सकूंगा।"

कांति ने कहा, "तो आप अपने पास से दे दीजिये।"

गांधीजी बोले, "मेरे पास तो अपना कुछ है ही नहीं।"

कांति ने कहा, "तो मैं बम्बई कैसे जाऊंगा ?"

गांधीजी ने उसी सहज भाव से उत्तर दिया, "हां, यह प्रश्न है, लेकिन..."

गांधीजी ने कुछ नहीं किया। यह दूसरी बात है कि महादेवभाई ने उसे अपनी जेब से बीस रुपये दे दिये।

: ३७ :

आज हमारे जीवन से कला गायब हो गई है

एक दिन गांधीजी मि० पोलक के साथ हाथ के कागज के कारखाने आदि देखने के लिए गये। और भी बहुत-सी वस्तुएं देखीं। डा० हरिप्रसाद देसाई उनके साथ थे। उस यात्रा में उन्होंने अहमदाबाद की गन्दी गलियां भी देखीं। उन्हें देखकर बोले, "आज हमारे जीवन से कला गायब हो गई है। ऋषिकेश और लक्षमण झूला जैसे तीर्थों में लोग कार्युगेटेड आयरन शीट्स का इस्तेमाल करते हैं। क्या उससे वहां का प्राकृतिक सौन्दर्य विकृत नहीं होता ?"

जब उन्होंने खेतरपाल की गली का जैन मन्दिर देखा। उन्हें और भी दुःख हुआ। चित्रित दीवारें, रंगबिरंगे चोक और उनके

बीच में एक छ:पैसे की लालटेन। वह खीज उठे, लेकिन वहींपर उन्होंने कई गलीचे देखे। उनपर जो चित्र बने थे, उनके लिए प्राकृतिक रंगों का ही प्रयोग किया गया था। यह देखकर वह बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, और लिखा भी, "यहां के धन-वान लोग जो अपना पैसा विदेशी कला के लिए खर्च करते हैं, उनसे मेरी सिफारिश है कि वे एक बार इन गलीचों को देखें।"

: ३८ :

स्वतन्त्रता का अर्थ स्वेच्छाचार नहीं होता

कैसे-कैसे लोग गांधीजी के पास आते थे। सुखी और दुखी, जीवन में कुछ करनेवाले और जीवन से हताश। हताश व्यक्तियों को सहानुभूति की विशेष आवश्यकता होती है। गांधीजी से वही सहानुभूति उन्हें मिलती थी। एक बार एक ऐसी ही बहन आश्रम में आई। वह बहुत दुखी थी और विशेष रूप से गांधीजी के पास रहना चाहती थीं। उसे आश्रम के कार्यक्रमों में कोई रस नहीं आता था। बस, गांधीजी की व्यक्तिगत सेवा-सुश्रूषा में लीन रहती थी। कई बार तो ऐसा अनुभव होता था कि वह आश्रम के अनिवार्य नियमों का पालन नहीं कर पा रही। एक दिन किसी कारणवश उसे बाहर जाना था। उसनें गांधीजी से अनुमति मांगी। गांधीजी ने कहा, "मेरी अनुमति ही काफी नहीं है। तुम्हें आश्रम के मंत्री से अनुमति मांगनी चाहिए।"

उस महिला को यह बात अच्छी नहीं लगी। बोली, "मैं तो

आपकी सेवा के लिए यहां रहती हूं। मुझे मंत्री की अनुमति की क्या आवश्यकता है ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "संस्था में रहने के लिए कुछ नियम होते हैं। वहां रहने पर हरेक बात की अनुमति बहुत आवश्यक है। स्वतन्त्रता का अर्थ स्वेच्छाचार या किसी एक व्यक्ति का आश्रय नहीं होता, समाज में रहनेवाले को समाज के अनुरूप ही व्यवहार करना चाहिए। ऐसा होने पर ही कोई संस्था संस्था कही जा सकती है, नहीं तो वह एक ही व्यक्ति का राज्य हो जायगा। जो व्यक्ति अपने द्वारा आप बंधता है वही बन्धन से छूटता भी है। इन सब बातों को समझ लेने के बाद जो कुछ तुझे ठीक मालूम हो वही करना। मैंने इस दुनिया में अपने से आजाद किसीको नहीं देखा, लेकिन मैंने अपने-आपको बांधकर अर्थात् नियम बनाकर, उनका पालन करके, अपनी स्वतन्त्रता की साधना की है।"

: ३६ :

कांग्रेस का काम करनेवाले छिपकर काम करना बन्द कर दें

गांधीजी उन दिनों यरवदा-जेल में नजरबन्द थे। वहीं सर्किल में भाई प्रतापसिंहजी भी थे। वह जेल से छूटने वाले थे। छूटने से एक सप्ताह पहले एक दिन दोपहर को गांधीजी ने उन्हें बुला भेजा। भाई प्रतापसिंहजी ऊंचे पूरे सिख थे। उन्हें देखकर

गांधीजी बहुत खुश हुए। इधर-उधर की बातचीत के अनन्तर सरदारजी ने गांधीजी से कहा, "कोई सन्देश दीजिये।"

गांधीजी बोले, "सन्देश मुझसे दिया ही नहीं जा सकता।"

सरदारजी ने कहा, "मेरे अपने सन्तोष के लिए दीजिये।"

गांधीजी बोले, "हां, एक सन्देश दे सकता हूं, क्योंकि उसे सार्वजनिक रूप से देने में भी मुझे कोई संकोच नहीं होगा। वह यह है कि कांग्रेस का काम करनेवाले छिपकर काम करना बन्द कर दें। हमारा धर्म तो गिरफ्तार हो जाना है। फिर छिपे-छिपे किसलिए फिरें? इससे जनता में डर के सिवा और कुछ पैदा नहीं हुआ है।"

यह सुनकर सरदारजी ने कहा, "तब तो जितने काम करनेवाले हैं, सब जेल में चले जायंगे। बाहर कोई भी नहीं रहेगा।"

गांधीजी बोले, "यह तो अच्छा है। जब सबकुछ ईश्वर पर छोड़ दिया, तब इन्सान की तदबीर कबतक और कहांतक साथ देगी? हमारे पास काम करनेवाले न हों तो यह बात सब लोग जान जायं। इसमें बुरा क्या है? मगर सारा समाज डरपोक बन जाय, यह मेरे लिए असह्य है। मैं तो सरकार के द्वारा भी यह बात जाहिर कर सकता हूं। मगर करता नहीं हूं, क्योंकि सरकार इसका दुरुपयोग और अनर्थ कर सकती है।

ज़ेवर गये यह दुःख की बात नहीं

सन् १९२९ में साबरमती-आश्रम में एक लड़की रहने के लिए आई। उसका विवाह हो चुका था। वह घूंघट निकालती थी। मिल के कपड़े पहनती थी। सोने-चांदी के जेवर भी बदन पर थे। आश्रम में आकर उसने घूंघट निकालना छोड़ दिया। खादी के कपड़े पहनने लगी और जेवर उतारकर बक्स में बन्द कर दिये, लेकिन उन्हें उसने दफ्तर में जमा नहीं करवाया। अपने पास ही रखा।

एक दिन उसका चाबी का गुच्छा खो गया। किसी तरह पेटी का ताला तोड़ा, तो पाया कि उसमें चांदी के कड़े नहीं हैं। लड़की रोने लगी। गांधीजी उन दिनों यात्रा पर थे। उन्हें भी इस बात की सूचना दी गई। उस लड़की ने स्वयं अपनी टूटी-फूटी भाषा में गांधीजी को पत्र लिखा था। तुरन्त उसका उत्तर आया :

चि० कलावती,

तुम्हारे जेवर गये, यह दुःख की बात नहीं, परन्तु सुख की बात मानो। तुमने आश्रम के नियम का उल्लंघन किया, इसलिए तुमको भगवान ने शिक्षा दी। तुम्हारे लिए जेवर का कोई उपयोग नहीं था। अब मेरा कहा मानो तो जो जेवर पहनती हो उसे भी उतार दो। उसे बेचो। उसके पैसे बैंक में रखो, तुम्हारा चित्त प्रसन्न होगा।

इस पत्र ने तो लड़की का जैसे काया-पलट कर दिया। चोरी के दु:ख को भूलकर उसका मन प्रसन्न हो आया और यह बात उसने स्वयं गांधीजी को लिख दी। गांधीजी ने तुरन्त उसका उत्तर देते हुए लिखा :

"...यदि हम अच्छी तरह सोचें, तो पता चलता है कि इस जगत में एक भी चीज किसी एक शख्स की नहीं है। किसी चीज को अपनी मानने के बदले यदि हम ईश्वर की मानें तो हमारा सारा दु:ख मिट जाता है। हम ईश्वर की तरफ से प्रतिनिधि यानी रक्षक हैं, यह मानकर हम उसकी रक्षा करें। यह हमारा धर्म हो जाता है। ऐसा करते हुए वह चीज नष्ट हो जाय या खो जाय तो हमें दुखी नहीं होना चाहिए।"

: ४१ :

मैं यहां नहीं रुक सकता

एक बार गांधीजी महाराष्ट्र का दौरा कर रहे थे। मीरज में एक छोटा-सा कार्यक्रम था। वह जल्दी ही पूरा हो गया। लेकिन वहां के लोग चाहते थे कि गांधीजी कुछ देर और वहां रहें।

गांधीजी ने उनका आग्रह स्वीकार नहीं किया। वे लोग अब भी अपनी हठ पर अड़े रहे। गांधीजी को रोकने का उन्होंने एक और उपाय ढूंढ़ निकाला। जाने का समय हो जाने पर भी कार कहीं नहीं दिखाई दी। गांधीजी ने पूछा, "गाड़ी कहां है ?"

लोगों ने उत्तर दिया, "वह तो बिगड़ गई है।"

गांधीजी बोले, "तब तो मुझे इसी क्षण अगले पड़ाव के लिए रवाना होना चाहिए। मैं यहां नहीं रुक सकता।"

यह कहकर वह पैदल ही चल पड़े। कुछ स्वयंसेवक भी साथ चल दिये। गांधीजी ने उनसे पूछा, "अगले पड़ाव का रास्ता किधर से जाता है ?"

वे लोग अब भी गांधीजी को नहीं समझ पाये थे। शरारत करने पर तुले हुए थे। उन्होंने उन्हें गलत रास्ता बतला दिया। उन दिनों गांधीजी जूते नहीं पहनते थे। गोखलेजी के स्वर्गवास के बाद उन्होंने एक वर्ष जूते न पहनने का व्रत लिया हुआ था। वह नंगे पैर ही उस रास्ते पर बढ़ गये। आगे मार्ग अवरुद्ध था, लेकिन वह रुके नहीं। खेत में से होकर उसी दिशा में चलते रहे। वहां कांटे बिछे हुए थे। वे उनके पैरों में चुभने लगे। यह देखकर वे स्वयंसेवक लज्जा से गड़ गये। उनके दुःख की कोई सीमा नहीं रही। उन्होंने क्षमा मांगी। उन्हें सही रास्ता बताया और एक-दो आदमियों को भेजकर मोटर का प्रबन्ध करने के लिए भी वे तैयार हो गये।

: ४२ :

उन्हें ले आओ

उस वर्ष (अप्रैल, १९३६) कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में होनेवाला था। गांधीजी उन दिनों अस्वस्थ थे। उनका खून

का दबाव बढ़ गया था। इसलिए लखनऊ जाने से पहले वह लगभग तीन हफ्ते आराम करने के लिए अपने पुत्र के पास हरिजन-निवास दिल्ली में ठहरे, लेकिन आराम मिलना क्या आसान था! दिन-भर मिलनेवाले आते रहते। फिर कार्यसमिति की बैठक भी वहीं पर हुई। इसके अतिरिक्त दर्शनार्थियों की भीड़ भी कम नहीं थी।

एक दिन एक स्त्री और पुरुष सवेरे ही वहां आये और यह संकल्प करके बैठ गये कि जबतक गांधीजी के दर्शन नहीं कर लेंगे तबतक भोजन नहीं करेंगे। पहले तो किसीने उनकी चिन्ता नहीं की, लेकिन सवेरा बीता, दोपहर भी बीत गई, संध्या होने को आई, वे दोनों इसी प्रकार भूखे-प्यासे बैठे रहे। जिनके हाथ में वहां का प्रबन्ध था, उन्होंने फिर भी उनकी ओर नहीं देखा। तब सहसा गांधीजी ने श्री चांदीवाला को बुला भेजा। कहा, "मुझे पता लगा है, एक दम्पति सुबह से यहां भूखे-प्यासे बैठे हैं। उनकी हठ है कि वह दर्शन करके ही यहां से जायंगे। अब तुम उन्हें ले आओ।"

: ४३ :

मेरे लिए तो सच्ची गोलमेज परिषद यह है

सन् १९३१ में जब गांधीजी गोलमेज परिषद में भाग लेने लन्दन गये, तब वह मिस म्यूरियल लेस्टर के बो स्ट्रीट में स्थित किंगस्ले हॉल में ठहरे थे। यह गरीबों की बस्ती में है। मित्रों

को इस बात की शिकायत थी कि गांधीजी महल और होटल छोड़कर इतनी दूर गरीबों के बीच में रहते हैं। वे सेंट जेम्स महल के निकट ही अपने घर उन्हें देने के लिए तैयार थे। लेकिन गांधीजी के लिए गरीबों का घर ही उनका अपना घर बन गया था। वहां घूमते समय जो मित्र उन्हें मिलते थे, जो बच्चे किसी भी क्षण उनको आकर घेर लेते थे, उन्हें छोड़ने में वह असमर्थ थे। उन्हें ऐसा लगता था जैसे वह अपने आश्रम में हैं और बच्चों के सहज परन्तु गम्भीर प्रश्नों का उत्तर देते हुए वह सत्य और प्रेम का संदेश फैला रहे हैं।

एक बच्चे ने पूछा, "मि० गांधी, आपकी भाषा क्या है?"

गांधीजी ने उत्तर में उसे अंग्रेजी और हिन्दी भाषाओं के समान शब्दों की व्युत्पत्ति समझाई और कहा, "हम सब एक ही पिता के पुत्र हैं।"

बच्चों के बहुत-से प्रश्न थे। जैसे वह कच्छ क्यों धारण करते हैं और उनके बीच में क्यों रहते हैं? गांधीजी सभीका उत्तर देते। अपने बचपन की बातें करते। उन्हें बताते कि घूंसे का जवाब घूंसे से देने की अपेक्षा घूंसे से न देना कितना अच्छा है।

इसी तरह जब मित्रों का आग्रह बढ़ा तो इन सब बातों की चर्चा करते हुए गांधीजी ने उनसे कहा, "मेरे लिए तो गोलमेज परिषद यह है। मैं जानता हूं कि मेरे ऐसे मित्र हैं, जो मुझे घर दे सकते हैं। मेरे लिए उदारता से पैसे खर्च कर सकते हैं, किन्तु मैं कुमारी लेस्टर के घर में सुखी हूं। जिस प्रकार का जीवन व्यतीत करने का मेरा ध्येय है, उसका स्वाद मुझे यहां मिलता है। उन्होंने मेरे लिए कोई नया खर्च नहीं उठाया। हां, अनेक

असुविधाएं उठाई हैं। अपने सिर पर बहुत परिश्रम ओढ़ लिया है। वे लोग मेरे लिए अपनी कोठड़ियां खाली करके बरामदे में सोते हैं। मेरे कारण जो काम बढ़ गया है, उसे वे प्रसन्नतापूर्वक कर लेते हैं। ऐसी दशा में मैं यह स्थान कैसे छोड़ सकता हूं!"

: ४४ :

बड़े लोग अक्सर कान में ही बात रख लेते हैं, मगर गरीब...

इंग्लैण्ड से भारत लौटते समय महात्मा गांधीजी इटली भी रुके थे। वहांपर उनकी भेंट टालस्टाय की सबसे बड़ी लड़की से हुई थी। जब वह आईं तो कुर्सी खींचकर गांधीजी के पास आ बैठीं। गांधीजी उस समय चर्खा कात रहे थे। शिष्टाचार के अनन्तर वह बोलीं, "यह तो आप जानते ही हैं कि मेरे पिता आपके बारे में बहुत सोचा करते थे।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "उनके पत्रों को मैं बहुत ही कीमती समझता हूं। उनकी तरफ से वे पत्र आपने लिखे थे या आपकी बहन ने?"

सिन्योरा आलबर्टनी ने उत्तर दिया, "हम सभी उन्हें काम में मदद करती थीं।"

बात को आगे बढ़ाते हुए वह बोलीं, "मेरे पिता कहा करते थे कि अगर मैं किसीको नहीं समझ सका तो टालस्टायवादियों को। वह नहीं चाहते थे कि लोग उनके अनुयायी बनें। लोग

अहिंसा का पालन करें। यही उनकी इच्छा थी। आपका और उनका कार्यक्रम इतना अधिक व्यावहारिक होने पर भी आप दोनों को स्वप्नदृष्टा, पागल और बेवकूफ कहा जाता है, यह विचित्र बात है।"

फिर सहसा वह पूछ बैठीं, "अंग्रेज आपको कैसे लगे, गांधीजी ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैंने वहां खूब मजे में अपना समय व्यतीत किया है। मैं बहुत अच्छे-अच्छे लोगों से मिला हूं।"

सिन्योरा को जैसे बहुत गहरा संतोष हुआ। बोलीं, "मुझे बहुत ही खुशी है, मुझे अंग्रेज प्रामाणिक और निष्पक्ष मालूम होते हैं।"

एक क्षण रुककर गांधीजी ने उत्तर दिया, "हां, ये लोग प्रामाणिक और निष्पक्ष हैं।"

सिन्योरा बोलीं, "ये दो गुण उनमें किस तरह आ पाये हैं ? मन की स्वतन्त्रता की बदौलत ही तो ?"

गांधीजी ने कहा, "यह तो स्पष्ट ही है कि इन लोगों में मन की स्वतन्त्रता बहुत है। लंकाशायर और लन्दन के पूर्वी भाग के मजदूर मुझे बात को जल्दी समझनेवाले और अक्लमन्द मालूम पड़े। मैं समझता हूं कि इंडिया आफिस के अधिकारियों की अपेक्षा इन मजदूरों के मन भारतीयों की आकांक्षाओं को अधिक अच्छी तरह समझ सके थे। बड़े लोग अक्सर कान में ही बात रख लेते हैं, मगर गरीब लोग सुनते और समझते हैं।"

दुर्गुणों को जला देना ही सच्चा सतीत्व है

सेठ जमनालाल बजाज गांधीजी के 'पांचवें पुत्र' के रूप में प्रसिद्ध थे। अचानक ११ फरवरी, १९४२ को उनकी मृत्यु हो गई। सूचना पाकर गांधीजी तुरन्त सेवाग्राम से वर्धा आये। सेठजी की धर्मपत्नी, श्रीमती जानकीदेवी बजाज, भाव-विह्वल हो आई थीं। गांधीजी को देखकर वह बोलीं, "बापूजी, आप उनके पास होते तो ये नहीं जाते। अब तो आप उन्हें जीवित कर दीजिये। क्या आप उन्हें जिला नहीं सकते ?"

गहन गम्भीर स्वर में गांधीजी बोले, "जानकी, तुम्हें अब रोना नहीं है। तुम्हें तो हँसना है और बच्चों को भी हँसाना है। जमनालाल तो जिन्दा ही हैं। जिसका यश अमर हो, उसकी मृत्यु कैसी ! उसने परमार्थ की जिन्दगी बिताई। जो काम उसने अपने कंधों पर लिया था, उसे अब तुम संभालो। मैं तुम्हें झूठा धीरज देने नहीं आया। जमनालाल बजाज का शरीर मर गया, पर असल जमनालाल तो जिन्दा ही है और आगे के लिए उसे जिन्दा रखना हमारा काम है।"

लेकिन जानकीदेवी को सांत्वना दना आसान काम नहीं था। उसी तरह विकल-विह्वल स्वर में उन्होंने कहा, "बापूजी, मैं सती होना चाहती हूं, अनुमति दीजिये।"

गांधीजी बोले, "शरीर को जलाने से क्या फायदा ! वह तो तुच्छ है, मिट्टी है। अपने सब दुर्गुणों को जला देना ही

सच्चा सतीत्व है। अपने सब दुर्गुणों को चिता में होम दो। फिर जो बाकी बचेगा वह शुद्ध कंचन रहेगा। उसको कैसे जलाया जाय ? उसे तो कृष्णार्पण ही किया जा सकता है।"

यह सुनकर न जाने जानकीदेवी में कहां से शक्ति आ गई। बोल उठीं, "बस, आज से मैं और मेरा सबकुछ कृष्णार्पण।"

: ४६ :

श्रीमती दास को बुरा लगेगा

सन् १६२४ में गांधीजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए दिल्ली में उपवास किया था। वहां से वह कलकत्ता गये थे और देशबन्धु चित्तरंजन दास के घर ठहरे थे। उनके दल में और व्यक्तियों के अतिरिक्त श्री राधाकृष्ण बजाज भी थे।

बंगाली लोग मछली खाते हैं, लेकिन राधाकृष्ण परम वैष्णव हैं। दासबाबू ने गांधीजी के दल के लोगों के लिए शाकाहारी भोजन का प्रबन्ध किया था। बनानेवाली भी सब शाकाहारी थीं, लेकिन राधाकृष्ण का सनातनी मन इस स्थिति से समझौता नहीं कर सका। उन्होंने बापूजी से कहा, "मैं यहां भोजन नहीं कर सकता। मुझे अपने मित्र के यहां जाने की आज्ञा दीजिये।"

गांधीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। कहा, "तुम ऐसा करोगे तो श्रीमती दास को बुरा लगेगा।"

राधाकृष्ण नहीं जा सके। एक ओर जहां गांधीजी छोटी-छोटी बातों में दूसरे के भले-बुरे का बहुत ध्यान रखते थे, दूसरी ओर अपने सेवकों के प्रति वह उतने ही कठोर भी थे।

तुम्हारी थाली में जो नमक है, उसे निकाल दो

एक बार एक ग्रामीण कार्यकर्ता अपने इलाके में हरिजन-कार्य के संबंध में गांधीजी से राय लेने के लिए आये। संभवत: वह आंध्र प्रदेश के थे। रोगी भी थे। हरिजन-कार्य के अतिरिक्त गांधीजी ने उनसे उनके रोग के संबंध में काफी पूछताछ की। सबकुछ जानकर वह बोले, "आप बहुत अधिक नमक तो नहीं खाते ?"

कार्यकर्ता ने उत्तर दिया, "जी नहीं, मैं बहुत कम नमक खाता हूं।"

गांधीजी बोले, "तुम्हें नमक माफिक नहीं आता। अच्छा हो, यदि तुम नमक बिलकुल ही छोड़ दो।"

उस दिन उस भाई ने आश्रम में ही भोजन किया। गांधीजी ने उन्हें अपने पास बैठाया। परोसी हुई थाली उनके सामने रखी गई। उसके बाद गांधीजी ने स्वयं कुछ चीजें परोसीं और मंत्र बोलने से पहले उनसे कहा, "तुम्हारी थाली में जो नमक है, उसे निकाल दो।"

कार्यकर्ता ने तुरन्त उत्तर दिया, "विश्वास रखिये, मैं नमक नहीं खाऊंगा।"

गांधीजी बोले, "इसीलिए तो कह रहा हूं कि इसे निकाल दो, जिससे यह बेकार न जाय।"

एक भाई तश्तरी ले आये और नमक निकाल दिया गया।

लेकिन जाते समय वह भाई बहुत लज्जित हुए। उन्हें छोड़ने के लिए कमलनयन बजाज उनके साथ जा रहे थे। उन्हीं से उन भाई ने कहा, "कैसी अजीब बात है, गांव का रहनेवाला होकर भी मैं यह नहीं महसूस कर सका कि यदि नमक थाली में से नहीं निकालूंगा, तो वह बेकार जायगा। जिन्दगी में इससे बड़ा पाठ मैंने कभी नहीं सीखा।"

: ४८ :

कोई बात न समझे हो, तो मुझसे पूछ लो

द्वितीय विश्व-युद्ध के समय सन् १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू हुआ था। सेठ जमनालाल बजाज इसी आन्दोलन में भाग लेने के कारण गिरफ्तार हो गये थे। उस समय उनके छोटे पुत्र रामकृष्ण बजाज कुल सत्तरह वर्ष के थे। उन्होंने चाहा, वह भी इस सत्याग्रह में भाग लें, लेकिन गांधीजी ने उन्हें आज्ञा नहीं दी, क्योंकि उनकी आयु अठारह वर्ष से कम थी।

रामकृष्ण बजाज ने फिर आग्रह किया। कहा जा सकता है कि उन्होंने हठ पकड़ ली कि उन्हें आज्ञा देनी ही पड़ेगी। गांधीजी उनका उत्साह भंग नहीं करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने रामकृष्ण को दो दिन बराबर सेवाग्राम में बुलाया और नाना प्रकार के प्रश्न पूछकर उनकी परीक्षा लेते रहे। वह बोले, "एक बार जेल जाने से काम नहीं चलेगा। जबतक आन्दोलन चलता है, बराबर जेल जाना होगा।"

रामकृष्ण ने कहा, "मुझे मंजूर है, लेकिन आप समय का कुछ अन्दाज तो देंगे।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "समय का अन्दाज कौन दे सकता है? लेकिन पांच वर्ष की तैयारी होनी चाहिए।"

रामकृष्ण ने कहा, "मैं तैयार हूं।"

गांधीजी ने इजाजत दे दी। यही नहीं, वर्धा के डिप्टी कमिश्नर को उन्होंने स्वयं चिट्ठी लिखी। इसके अतिरिक्त अपने हाथ से एक वक्तव्य लिखा। उसे रामकृष्ण को देते हुए वह बोले, "गिरफ्तार होने पर अदालत में जब तुम्हारी पेशी हो तब यह वक्तव्य तुम्हें देना होगा। इसे पढ़ लो। कोई बात न समझे हो तो मुझसे पूछ लो।"

पढ़ने के बाद फिर बोले, "इस वक्तव्य में लिखी गई किसी बात से अगर तुम असहमत हो, तो मुझे बता दो। मैं इसे बदल दूं।"

एक सत्तरह वर्ष का बालक गांधीजी के ये वाक्य सुनकर गद्‌गद हो गया। बच्चे से भी वह कैसा बराबरी का नाता रखते थे। उनके इस व्यवहार से रामकृष्ण का मन उत्साह से भर गया और आगे आनेवाला जेल का जीवन उन्हें तनिक भी नहीं अखरा।

तुम्हें कह देना चाहिए था कि तुम नहीं आ सकोगे

सन् १९३४ में अपनी हरिजन यात्रा के समय गांधीजी बंगलौर भी गये थे। प्रोफेसर मलकानी उनके साथ थे और वह कुमार पार्क पैलेस में ठहरे थे। प्रो० मलकानी सजे हुए और सुन्दर कमरों में ठहरे थे। लेकिन गांधीजी ने बरामदे में एक कोने में ही रहना स्वीकार किया था।

जैसा कि सदा होता था, वह हरिजनों के लिए फण्ड इकट्ठा करते रहते थे। महिलाओं से उनकी चूड़ियां, हार, अंगूठियां कुछ भी लेने से उन्हें परहेज नहीं था। वे उन्हें मिल भी तुरन्त जाती थीं। उसके बाद वह उन्हें नीलाम कर देते थे। एक दिन गांधीजी सभी गहने नीलाम नहीं कर सके। उन्होंने घोषणा की कि बचे हुए गहनों का नीलाम कल ११ बजे प्रो० मलकानी करेंगे।

लेकिन भाग्य की बात, मलकानीजी को ज्वर हो आया और अपनी शैया में लेटे हुए वह गहने नीलाम करने की बात भूल गये। नियत समय और स्थान पर कुछ ग्राहक आये, लेकिन वहां तो कोई भी नहीं था। वे गांधीजी के पास पहुंचे। गांधीजी ने तुरन्त मलकानीजी को सूचना दी। अब उन्हें याद आया। क्षमा-याचना करते हुए उन्होंने लिखा, "ज्वर हो जाने के कारण मैं इस बात को भूल ही गया था।"

गांधीजी का उत्तर आया, "लेकिन तुम्हें किसीसे कह देना चाहिए था कि तुम नहीं आ सकोगे।"

उसके बाद उन्होंने प्रो० मलकानी को आदेश दिया कि वह उन ग्राहकों को ढूंढें, उनसे क्षमा-याचना करें और गहनों को नीलाम करें।

: ५० :

मैं प्रतिदिन तुम्हें आधा घंटा दे सकता हूं

जून १९३० में गांधीजी जिस समय यरवदा-जेल में थे, उस समय काकासाहब कालेलकर भी कुछ महीनों के लिए उनके साथ रहे थे, लेकिन उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं था। कुछ दिन तो वह चारपाई पर लेटे रहे। स्वयं गांधीजी उनकी देखभाल करते थे और अपने पत्रों में बराबर आश्रमवासियों को उनके स्वास्थ्य की सूचना देते रहते थे।

एक दिन काकासाहब स्वस्थ हो गये। गांधीजी ने उनसे कहा, "मैं जानता हूं, तुम सदा कुछ-न-कुछ लिखते रहते हो और बोलकर लिखाते हो। यहां हम केवल दो ही व्यक्ति हैं। तुम प्रतिदिन आधा घंटा मुझे बोलकर लिखा सकते हो। मैं तुम्हें आधा घंटा दे सकता हूं।"

यह सुनकर काकासाहब स्तब्ध रह गये। बड़े विनम्र भाव से उन्होंने कहा, "क्या मेरे पास ऐसा कुछ है, जो मैं आपको बोल-कर लिखा सकूं ? आपके प्रस्ताव ने मुझे गद्‌गद् कर दिया है।

मैं अपनी क्षुद्रता को जानता हूं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "नहीं-नहीं, मैं जानता हूं, तुम्हें सहायता की आवश्यकता है। तुम हमेशा किसी-न-किसीको बोलकर ही लिखाते हो। यहां मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं है और मैं आसानी से आधा घंटा तुम्हारे लिए काम कर सकता हूं।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि काकासाहब ने उस प्रस्ताव पर कोई ध्यान नहीं दिया।

: ५१ :

बिना धोये आलू काटना तुम कैसे सहन कर सकते हो ?

गांधीजी की दृष्टि इतनी व्यापक थी कि आश्चर्य होता था। देश की बड़ी-बड़ी समस्याओं को सुलझाते हुए भी वह अपने आश्रम के रसोईघर के छोटे-से-छोटे कामों में खूब रस लेते थे। कभी-कभी तो घंटों चक्की दुरुस्त करते रहते थे। चावल और दूसरे अनाज की सफाई उनके ही कमरे में होती थी। रसोईघर में जाकर स्वयं वहां की सफाई और व्यवस्था देखते थे। ऐसे ही समय उन्होंने एक दिन देखा कि रसोईघर के एक अंधेरे कोने की छत में मकड़ी का जाला लगा हुआ है। उसकी तरफ इशारा करते हुए उन्होंने रसोईघर के व्यवस्थापक बलवन्तसिंह से कहा, "देखो, वह क्या है ? रसोईघर में जाला हमारे

लिए शर्म की बात है।"

बलवन्तसिंह को बड़ी लज्जा आई, लेकिन क्या यह एक ही दिन की बात थी ! दूसरे दिन आकर उन्होंने देखा कि बलवन्त सिंह और उसके साथी बिना धुले हुए आलू काट रहे हैं। तुरन्त बोले, "बलवन्त, बिना धोये आलू काटना तुम कैसे सहन कर सकते हो ? उनमें चारों तरफ मिट्टी लग जाती है। पहले उनको खूब रगड़कर धोना चाहिए और फिर काटना चाहिए।"

बलवन्तसिंह की क्या दशा हुई होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है।

: ५२ :

इसको अभी नया करके दो महीने चलाऊं तो ?

नोआखाली की ऐतिहासिक यात्रा के समय दिसम्बर १९४६ में गांधीजी श्रीरामपुर में ठहरे हुए थे। उनके पास एक अंगोछा था। बीच में से फटकर वह बिलकुल जर्जर हो गया था। मनु गांधी ने बहुत प्रयत्न किया कि उसमें जोड़ लगाया जा सके, लेकिन वह सफल नहीं हो सकी। अन्त में एक नया अंगोछा मंगवाकर उसने गांधीजी को दिया।

उसे देखकर गांधीजी बोले, "नहीं, अभी पुराना अंगोछा ही काम देगा।"

मनु को विश्वास था कि उस अंगोछे में अब जोड़ नहीं लग

सकता। रफू करना तो असम्भव है, इसलिए उसने तुरन्त उत्तर दिया, "बापूजी, इसे तो छुट्टी देनी ही होगी। अब इसमें आप क्या करेंगे?"

गांधीजी हँसे और मनु के कान खींचकर बोले, "इसको अभी नया करके दो महीने चलाऊं तो?"

मनु ने उत्तर दिया, "आप चला ही नहीं सकते।"

गांधीजी ने तुरन्त उसे उसी हालत में डबल किया और ठीक चौकोर बनाकर अच्छी तरह जोड़ा। फिर रफू कर दिया। अब तो सचमुच उसकी उम्र दो महीने तो बढ़ ही गई। वह बहुत सुन्दर बन गया। लेकिन मनु ने कहा, "इसे तो मैं नमूने के रूप में अपने पास रखूंगी। आप नया अंगोछा ही ले लीजिये।"

उसने उसे अपने पास रख लिया।

: ५३ :

हिन्दी उतनी ही उपयोगी है जितनी आपकी यह साइंस

नन्दी (बेंगलोर) प्रवास के अवसर पर एक दिन सुविख्यात वैज्ञानिक सर चन्द्रशेखर रामन गांधीजी से मिलने आये। उनकी पत्नी पहले ही वहां मौजूद थीं और वह महात्माजी से हिन्दी में बातें कर रही थीं। सर चन्द्रशेखर ने हिन्दी की खिल्ली उड़ाते हुए पूछा, "यह हिन्दी क्या कुछ उपयोगी है?"

गांधीजी ने कहा, "इसमें सन्देह ही क्या है! हिन्दी उतनी

ही उपयोगी है, जितनी आपकी यह साइंस।"

यह सुन कर सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। इधर-उधर की बातें करते हुए सर चन्द्रशेखर ने कहा, "हिन्दुस्तान के जन-साधारण की भाषा कौनसी हो सकती है? क्या वह अंग्रेजी नहीं हो सकती?"

शायद यह बात उन्होंने उतनी गम्भीरता से नहीं कही थी, जितनी गांधीजी को चिढ़ाने के लिए। गांधीजी बोले, "हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमी जो बगैर सीखे ही हिन्दी जानते हैं अगर वे अंग्रेजी सीखने का प्रयत्न करें तो क्या आपके खयाल में उनके लिए दुर्भाग्य की बात न होगी?"

सर चन्द्रशेखर तुरन्त बोल उठे, "मुझे खुशी है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दी बड़ी तेजी से दक्षिण भारत में प्रगति कर रही है। मैं हिन्दी भी जानता हूं, महात्माजी। मैं उसे अच्छी तरह समझ लेता हूं। मालवीयजी महाराज मेरे हिन्दी के गुरु हैं। जब मैं काशी में था तब कभी-कभी घंटों उनकी सुन्दर हिन्दी सुनने का मुझे अवसर मिलता था और मुझे हिन्दी सीखनी ही चाहिए थी; पर मैं हिन्दी बोल नहीं सकता।"

: ५४ :

अनियमित कतवैया रोगी कतवैया है

उन दिनों यात्रा करते हुए गांधीजी कोडल नाम के एक गांव में पहुंचे। वहां उन्हें कुछ जुलाहे दिखाई दिये। वह उन्हें

बताना चाहते थे कि सूत कैसे काता जाता है। इसलिए उन्होंने अपना चर्खा मांगा। श्री राजकृष्ण बसु, जो बड़े उत्साही नवयुवक थे, गांधीजी का चर्खा लेने के लिए दौड़े और अपनी समझ में उसे ठीक करके ले आये। उसे देखकर गांधीजी ने पूछा, "इस चर्खे को किसने ठीक किया है?"

राजकृष्णबाबू बोले, "मैंने।"

गांधीजी ने कहा, "यह तो चलता ही नहीं है। अगर आप ठीक करना नहीं जानते हैं, तो इसे हाथ नहीं लगाना चाहिए था।"

फिर विनोद के स्वर में बोले, "यह 'स्टार आफ उत्कल' का सम्पादन करना नहीं है।

वह स्वयं चर्खा सुधारने लगे। काफी देर लग गई। श्रीयुत वेंकटप्पैय्या यह देखकर बोले, "आप इसे छोड़ क्यों नहीं देते? फिर ठीक कर लीजियेगा या कोई और ठीक कर देगा। आपको और जरूरी काम करने हैं। आपके पास समय नहीं है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जिन्हें बेकार कामों में मदद करने में समय नहीं रहता, उन्हें जरूरी कामों के लिए हमेशा समय मिल जाता है।"

इतना कहकर वह राजकृष्णबाबू की ओर मुड़े। पूछा, "क्या आपने कभी चर्खा चलाया है?"

वह बोले, "हां, महात्माजी, मैं सूत कातता हूं, लेकिन मेरा चर्खा दूसरी तरह का है।"

गांधीजी ने फिर पूछा, "आप रोज कितना कातते होंगे?"

राजकृष्णबाबू ने उत्तर दिया, "कभी पंद्रह मिनट, कभी

आधा घंटा और कभी एक घंटा भी, लेकिन मैं नियमित रूप से नहीं कातता।"

इसपर गांधीजी बोले, "क्या आप रोज खाना खाते हैं ? मुझे आशा है कि आप खाते हैं। जो रोज नहीं खाते, वे रोगी कहे जाते हैं। इसी प्रकार अनियमित कतवैया रोगी कतवैया है।"

तबतक चर्खा ठीक हो गया था। गांधीजी श्री वेंकटप्पैय्या की ओर मुड़े और बोले, "क्या आप समझते हैं, यदि मैं चर्खे को ठीक नहीं करता तो क्या यह जान पाता कि चर्खा कहां बिगड़ा है और उसे कैसे सुधारना होगा ?"

अब वह जुलाहों से बातें करने में निमग्न हो गये। उन्हें क्या मिलता है ? कैसे रहते हैं ? यह सब पूछा और फिर कहा, "यदि आपमें से कोई आगे सीखना चाहें, तो साबरमती-आश्रम में काम सीखने के लिए आ सकते हैं। शर्त केवल यही है कि सीखकर फिर औरों को सिखाना।"

: ५५ :

सुधारक अपने घर से काम करने की बात नहीं सोचते

गांधीजी अपने मद्रास-प्रवास में श्री नटेसन के घर ठहरे थे। एक दिन वह अपने साथ नायकर नाम के एक पंचम लड़के को ले आये। कुछ समय पूर्व श्री नटेसन ने दलित-जातियों की एक सभा का सभापतित्व किया था और उच्च वर्ग के लोग अछूतों

पर जो अत्याचार करते हैं उनकी कड़े शब्दों में निन्दा की थी। शायद यही सोचकर वह उस पंचम लड़के को ले आये थे। लेकिन श्री नटेसन के घर में तो सब पुराने विचारों के लोग थे, विशेषकर उनकी वृद्धा मां। उस पंचम लड़के को घर में देखकर वह हतप्रभ रह गईं। उनकी दृष्टि में यह स्पष्ट ही अनाचार था।

श्री नटेसन बड़े परेशानी में पड़े। स्थिति सचमुच विचित्र थी। लेकिन गांधीजी तो अपना काम करना जानते थे। कई दिन इसी प्रकार बीत गये कि अचानक वह लड़का बीमार हो गया।

उस समय गांधीजी ने जिस प्रकार उसकी सेवा की, उसे देखकर सब लोग चकित रह गये। वह उसके पास बैठे रहते थे। उसकी सार-संभाल करते थे। ऐसा वह तबतक करते रहे जबतक वह लड़का पूर्ण स्वस्थ न हो गया। उस समय श्री नटेसन ने देखा कि उनकी वृद्धा मां में एक परिवर्तन आ रहा है। वह इस नई स्थिति को स्वीकार करती जा रही हैं। यह सबकुछ चुपचाप हुआ।

बहुत दिन बाद गांधीजी ने श्री नटेसन को लिखा, "तुमने देखा था कि माताजी का व्यवहार नायकर के प्रति कितना उदार और स्नेह भरा था। तुम्हें इस बात में शंका थी कि तुम उनके विचार बदल सकोगे। सुधारकों की यही आदत है। वे अपने घर से काम शुरू करने की बात नहीं सोचते।"

हमें शुभ कार्य में हिचकना नहीं चाहिए

सन् १९३४ में हरिजन-यात्रा के समय गांधीजी अजमेर गये थे। उन दिनों वहां के विख्यात नेता श्री अर्जुनलाल सेठी राजनैतिक मतभेदों के कारण एकान्त सेवन कर रहे थे। उनके एक मित्र ने महात्माजी को प्रेरित किया कि वह सेठीजी के घर जायं, जिससे उन्हें पता लग जाय कि महात्माजी के दिल में उनके लिए पहले जैसा ही प्रेम है।

गांधीजी ने श्री हरिभाऊ उपाध्याय से पूछा, "क्यों, तुम्हारी क्या राय है ?"

हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "जाने में तो कोई हर्ज नहीं है, परन्तु मुझे यह विश्वास नहीं होता कि ऐसा करने से सेठी-जी की वृत्ति में कोई विशेष अन्तर आनेवाला है।"

गांधीजी बोले, "पर तुम साथ चलोगे न ?"

हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "क्यों नहीं ! सेठीजी को मैं अपना बुजुर्ग मानता हूं।"

गांधीजी बोले, "तो जाना ही ठीक है। तुम जैसा कहते हो वैसा ही नतीजा निकले तो भी हमें शुभ कार्य में हिचकना नहीं चाहिए। तात्कालिक परिणाम अच्छा न निकले, तो भी शुभ कार्य का जो परिणाम निकलेगा वह अच्छा ही होगा। बुरा हरगिज नहीं हो सकता।"

गांधीजी सेठीजी के घर पहुंचे। उन्हें देखते ही सेठीजी और

उनकी धर्मपत्नी अपनेको भूल गये। प्रेम की विह्वलता में उन्हें सूझ ही नहीं पड़ा कि क्या बोलें और क्या करें। कुछ देर बाद इतना ही कहा, "मुझे कुछ नहीं कहना है। आप इन बच्चों के सिर पर हाथ रख दीजिये, जिससे वे देश के सच्चे सेवक बनें।"

: ५७ :

क्या तुम मन्त्री होना चाहते हो ?

शायद यह १९३७ के प्रारम्भ की बात है। कांग्रेस तबतक यह निश्चय नहीं कर पाई थी कि उसे नये विधान के अन्तर्गत पद स्वीकार कर लेने चाहिए या उसे सरकार से असहयोग कर लेना चाहिए। उसी समय एक दिन एक पत्रकार ने गांधीजी से पूछा, "बापूजी, क्या कांग्रेस मंत्रिमण्डल बनाना स्वीकार कर लेगी ?"

गांधीजी ने विनोद करते हुए उस पत्रकार से प्रतिप्रश्न कर दिया, "क्यों, क्या तुम मंत्री बनना चाहते हो ?"

बेचारा पत्रकार ! वह घबरा गया और पीछे हटने लगा, लेकिन गांधीजी क्या उसे आसानी से जाने दे सकते थे ! बोले, "क्या कृपा करके भीख मांगने के लिए आप अपना टोप मुझे नहीं दे देंगे ?"

पत्रकार बन्धु ने तुरन्त अपना टोप सिर से उतारा और गांधीजी को दे दिया, लेकिन गांधीजी तो अपने विनोद को चरम सीमा पर पहुंचा देने में विश्वास करते थे। उन्होंने वह टोप

लेकर तुरन्त उसके स्वामी के आगे किया और कहा, "हरिजनों के लिए कुछ दीजिये।"

हँसी के ठहाकों के बीच उस बेचारे पत्रकार ने चांदी के कुछ सिक्के अपने ही टोप में डाल दिये। कैसा अद्भुत था यह अर्ध-नग्न भिखारी फकीर!

: ५८ :

यह पानी पीने योग्य नहीं है

डांडी-यात्रा के समय नमक बनाकर गांधीजी वापस डांडी की ओर लौट रहे थे। वह कार में थे और मार्ग में महादेव देसाई का गांव पड़ता था। गांधीजी उनकी माताजी से मिलने के लिए कुछ क्षण वहां रुके। जब वह मिलकर लौटे तो किसीने पीने के लिए पानी मांगा।

तुरन्त एक ग्रामीण बन्धु एक लोटा जल और एक पीतल का कटोरा ले आये। इसी बीच में बहुत-से गांववालों ने गांधी-जी की कार को घेर लिया और उन्हें पैसे देने लगे। अप्पासाहब पटवर्धन कार के पास खड़े हुए थे। उनके एक हाथ में पानी का लोटा था और दूसरे में कटोरा था। वह उसमें पानी डालनेवाले ही थे कि सहसा उन्होंने देखा कि एक स्त्री गांधीजी को एक रुपया देने के लिए उनके पास आने का प्रयत्न कर रही है, लेकिन आ नहीं पा रही है।

अप्पासाहब के दोनों हाथ घिरे हुए थे, इसलिए उन्होंने

अपना कटोरा उसके आगे कर दिया और स्त्री ने वह रुपया उसमें डाल दिया। अप्पासाहब ने उस रुपये को कार में बिछे हुए रूमाल में उलट दिया और फिर उस कटोरे को पानी से भरा।

ग्रीष्म ऋतु थी। गांधीजी सिर पर गीला तौलिया रखे हुए थे। जैसे ही अप्पासाहब ने पानी से भरा कटोरा प्यासे मित्र की ओर बढ़ाया, गांधीजी ने अपना तौलिया आगे करते हुए कहा, "पानी इसपर डाल दो।"

शोर इतना था कि अप्पासाहब कुछ सुन नहीं सके। अन्तिम वाक्य ही उनके कान में पड़ा। गांधीजी कह रहे थे, "इस कटोरे में सिक्का पड़ा हुआ था। यह पानी पीने योग्य नहीं है।"

अब अप्पासाहब की समझ में आया। उन्होंने पानी फेंक दिया और कटोरे को साफ करके पानी भरा।

गांधीजी बहुत दुखी हुए। एक कटोरा पानी बेकार चला गया। वह पीने योग्य नहीं था, लेकिन तौलिये को भिगोने का काम तो कर ही सकता था।

कड़ी धूप में फावड़ा चलाने की आदत डालनी चाहिए

दक्षिण अफ्रीका में पाठशाला आश्रम-जीवन का एक अभिन्न अंग थी। पढ़ाई का काम सवेरे ६ से ११ बजे तक चलता था। ११ से ११॥ तक सब विद्यार्थियों को खेत में काम करने के लिए जाना पड़ता था। पाठशाला की शीतल छाया से निकल-कर चिलचिलाती दोपहरी में कंधे पर फावड़ा रखकर, खोदने जाने के लिए, उनका जी नहीं करता था। वह आधा घंटा इधर-उधर चक्कर काटकर बिता देने की नीयत रहती थी। परन्तु गांधीजी किसीकी एक नहीं सुनते थे। ११ बजते ही पुस्तकें बन्द करवाकर सबको खेतों पर ले जाते। कुदाल, फावड़ा परखने और उठाने में दो मिनट भी नष्ट हों, यह वह गवारा नहीं करते थे। वह काम की निश्चित मात्रा बता देते थे और उसे पूरा करने के बाद ही छुट्टी मिलती थी। उस आधा घंटे में प्रायः एक घंटे का काम हो जाता था।

एक बार पढ़ाई समाप्त हो जाने पर ११ बजने में १० मिनट शेष रह गये थे। उस दिन गांधीजी बहुत प्रसन्न थे और बच्चों से हास्य-विनोद करने में रुचि ले रहे थे। इस अवसर का लाभ उठाकर एक विद्यार्थी ने कहा, "बापूजी, यह आध घंटे-वाली खेती अच्छी नहीं लगती। खेत में आने-जाने में ही कुछ समय कट जाता है। आप सवेरे ही हमसे आधा घंटा श्रम करवा

लिया करें।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं ऐसा करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूं। कड़ी धूप में फावड़ा चलाने की आदत तुम्हें डालनी चाहिए। कल को यदि लड़ाई छिड़ गई और जेल जाना पड़ा तो वहां शीतल छाया में बैठने को थोड़े ही मिलेगा। वहां तो बहादुर मजदूर की तरह कमर तोड़कर, कड़ाके की धूप में फावड़ा चलाना पड़ेगा। अगर वहां तुम हार गये तो मेरी और तुम्हारी दोनों की नाक कट जायगी। इससे तो बेहतर है कि तुम पाठशाला छोड़कर घर लौट जाओ। फिर निपट स्वार्थी बनना भी हम लोगों को शोभा नहीं देता। तुम यहां सब मजे में बैठे पढ़ रहे हो और बुजुर्ग लोग सवेरे से हड्डियां गलाकर परिश्रम कर रहे हैं। हमें उनका साथ देना चाहिए। काम की पूर्णाहुति के समय सारी पाठशाला यदि उनकी मदद को पहुंच जाय, तो उनको बहुत संतोष होगा। उनकी थकान भी दूर हो जायगी।"

: ६० :

ऐसे पापी का पाप मैं क्यों न देख सका ?

एक व्यक्ति के, जिसके लिए गांधीजी ने बड़ी जोखम उठाई थी, चरित्र के बारे में उन्हें बड़ा विश्वास था, परन्तु उस व्यक्ति का भीतरी जीवन बहुत ही मलिन मालूम हुआ। अतः गांधीजी

ने उसके लिए प्रायश्चित किया और यह आशा रखी कि कमजोरी के कारण उसमें जो मलिनता आ गई है, वह इससे नष्ट हो जायगी। परन्तु अन्त में उन्हें विश्वास हो गया कि उस व्यक्ति की मलिनता नष्ट नहीं हुई है। वह उन्हें चालाकी से धोखा देता है।

एक दिन सुबह के साढ़े दस बजे सब खाना खाने बैठे। रावजीभाई और गांधीजी सबको परोस रहे थे। रावजीभाई जब भोजनालय में गये तो पीछे-पीछे गांधीजी भी आये और बोले, "उसने आज भयंकर झूठ बोला और मुझे कहना पड़ा कि अब दुबारा इस तरह जान-बूझकर झूठ बोलोगे तो मैं चौदह दिन का उपवास करूंगा।"

इस बात को चौबीस घंटे बीत गये। फिर वही समय, फिर वही अवसर। गांधीजी ने रावजीभाई से कहा, "उसने तो गज़ब कर दिया ! आज भी जान-बूझकर झूठ का प्रयोग किया। अब मुझे चौदह दिन का उपवास करना ही पड़ेगा।"

सुनकर रावजीभाई स्तब्ध रह गये। लेकिन गांधीजी ने उनसे कहा, "तुम खा लो। फिर मगनलाल और छगनलाल को बुला लाओ।"

रावजीभाई तुरन्त जाने लगे, लेकिन गांधीजी ने कहा, "मेरी आज्ञा है, तुम खा लो। तुममें से किसीको इस बारे में विचार नहीं करना चाहिए। किसीको मेरे साथ उपवास करके अपना नित्य-कर्म बिगाड़ना या उसमें त्रुटि नहीं करनी चाहिए।"

रावजीभाई ने तर्क किया, "परन्तु आप इस तरह हर किसी बात पर उपवास करें, इसका क्या अर्थ है ? हमारे पापों के लिए

आप क्यों उपवास करें? आपके हृदय की छाया इतनी ठंडी है कि उसकी शीतलता में भयंकर जहरीला नाग भी पल सकता है। उसके पाप के कारण आप भूखों मरें, यह कहां का न्याय है!"

गांधीजी ने रावजीभाई के हृदय की पीड़ा को समझा। वह हँसे, और गम्भीर स्वर में बोले, "हर कोई झूठ बोले या मुझको धोखा दे, तो मुझे चोट नहीं लगती है। उसके लिए मैं अपनेको दोषी नहीं मानता। चौदह दिन का उपवास करने का मैंने जो निश्चय किया है, वह किसीके पाप का प्रायश्चित करने की खातिर नहीं किया है, बल्कि कल मैंने जो यह प्रतिज्ञा की थी कि अब दुबारा इस तरह तुम जान बूझकर झूठ बोलोगे तो मैं चौदह दिन का उपवास करूंगा, इस प्रतिज्ञा की खातिर मुझे उपवास करना पड़ेगा। परन्तु जिन्हें मैं अपना मानता हूं, जिनपर मुझे विश्वास है, जिनके लिए मैंने खतरे उठाये हैं, वही व्यक्ति झूठ बोलें और मुझे धोखा दें तो इसमें मेरा ही पाप है। यह मुझे दीपक की तरह स्पष्ट दिखाई देता है। मुझमें पाप न हो तो ऐसे पापी का पाप मैं क्यों न देख सका! पत्थर और हीरे का फर्क जौहरी को करना आना ही चाहिए। अपने जिन आदमियों को मैं मानता हूं और अपने हृदय का प्रतिबिम्ब समझता हूं, उनमें यदि असत्य हो तो मुझमें असत्य होना ही चाहिए। यह मेरा जीवन है, इसके खातिर मैं जीता हूं। तुम्हें तो मुझे हिम्मत बंधानी है। मैं अशक्त हो जाऊं तब मेरी सेवा करना और इस तरह से काम करते रहना कि हमारे नित्य कार्य में कोई कमी न आये। मेरे पीछे उपवास करके मेरी मुश्किलें बढ़ाकर मुझे चिन्तातुर बनाना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है।"

कूच पंद्रह जनवरी तक मुल्तवी रखा जाता है

दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार ने हिन्दुस्तानियों के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमीशन नियुक्त करने की घोषणा की। लेकिन इस संबंध में उसने हिन्दुस्तानियों से कोई राय नहीं ली। उनके प्रतिनिधि तो क्या होते, उनसे सहानुभूति रखनेवाले व्यक्तियों को भी नियुक्त नहीं किया गया था। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तानियों ने उस कमीशन का बहिष्कार करने का निर्णय किया। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि सरकार की ओर से उनकी मांगों का आशाजनक उत्तर इसी महीने न मिल जाय तो १ जनवरी, १९१४ के दिन डरबन से ट्रांसवाल तक एक बड़ा कूच शुरू किया जाय।

इसी समय गांधीजी को कुमारी हॉब हाऊस नाम की महिला का एक तार मिला। लिखा था—"मेरी जैसी एक अबला की प्रार्थना पर अपना कूच १५ दिन के लिए स्थगित कर दीजिये।"

इस महिला ने अंग्रेज़-बोअर-युद्ध के समय युद्ध-पीड़ित बच्चों और बहनों की स्तुत्य सेवा की थी। बोअर-जाति के बीच ही उसने अपना जीवन बिताया था। हिन्दुस्तानियों की बुरी अवस्था की कहानी सुनकर इस दयालु बहन का हृदय जल उठा। निजी तौर पर उन्होंने जनरल स्मट्स और जनरल बोथा से हिन्दु-स्तानियों के प्रश्न का निबटारा करने का आग्रह किया। उनसे

आश्वासन पाकर ही उसने गांधीजी को तार दिया।

गांधीजी उस तार से प्रभावित हुए। वह उस महिला से परिचित नहीं थे, लेकिन उसकी प्रतिष्ठा के बारे में वह जानते थे। ऐसी निर्मल, न्यायनिष्ठ, नीतिपूर्ण, सहृदय और वीर रमणी की मांग का निरादर करना उनको पसन्द नहीं आया। उन्होंने अपने साथियों से सलाह की और फिर घोषणा की—"कूच १५ जनवरी तक मुल्तवी रखा जाता है।"

उन्होंने ऐसा करके प्रमाणित कर दिया कि सत्याग्रह में हठ के लिए कोई स्थान नहीं है। उसका आधार विवेक-बुद्धि है।

: ६२ :

देशभाई मेरे मालिक हैं

दक्षिण अफ्रीका में जो अन्तिम समझौता हुआ था, उससे कई कारणों से मुसलमान भाई प्रसन्न नहीं थे। उनमें कुछ शरारती भी थे। वे जान-बूझकर झगड़ा करने के लिए असन्तोष फैलाने लगे, "गांधी तीन पौण्ड के कर के लिए ही लड़े। उसे उठवा दिया, परन्तु उसका लाभ केवल हिन्दुओं को ही मिला। गिरमिटिया मजदूरों में अधिकांश हिन्दू ही हैं। मुसलमानों को कोई खास लाभ नहीं हुआ।"

इन बातों का परिणाम यह हुआ कि सन् १९०७ में जैसा वातावरण पैदा हो गया था, वैसा ही वातावरण अब जोहानिसबर्ग में पैदा हो गया था। कुछ गुण्डे खुले आम गांधीजी को

मारने की बात करने लगे। इसकी सूचना गांधीजी को भी मिली। उस समय वह केपटाउन में थे। लोगों ने उनसे आग्रह किया कि वे जोहानिसबर्ग में न उतरकर सीधे नेटाल जायं, परन्तु गांधीजी ऐसे डरपोक नहीं थे। उन्होंने जोहानिसबर्ग जाने का निश्चय किया। वहां उनपर हमला हो और उनकी मौत हो जाय, तो भी वह सत्याग्रह के सिलसिले में ही होगी। ऐसी मौत तो वह चाहते ही थे। उन्हें लगा कि ऐसा हमला हो सकता है और उनकी मृत्यु भी हो सकती है। इस विचार से उन्होंने फिनिक्स-वासियों के नाम एक महत्वपूर्ण पत्र लिखा। वह एक प्रकार से वसीयतनामा ही था। उसके बाद वह जोहानिसबर्ग चले गये। उनके स्वागत में वहां कई सभाएं हुईं। एक दिन मुसलमान भाइयों ने भी एक सभा की और उन्हें बुलाया। कुछ लोगों ने उन्हें वहां न जाने की सलाह दी। लेकिन उन्होंने कहा, "मालिक नौकर को बुलाए और नौकर न जाय तो वह कितना उद्दण्ड और हरामी माना जायगा। देशभाई मेरे मालिक हैं। वे मुझे किसी भी समय बुलावें, मुझे जाना ही चाहिए।"

वह वहां गये। उनसे समझौते की बातें समझाने के लिए कहा गया। वह समझाने लगे तो बीच-बीच में प्रश्न पूछे जाने लगे। फिर धीरे-धीरे असभ्यता का प्रदर्शन होने लगा। एक समय ऐसा लगा कि अभी दंगा हो जायगा। इतने में एकाएक एक महान क्रूर पठान हाथ में एक बड़ा-सा खुला हुआ छुरा लेकर सामने आ खड़ा हुआ। बोला, "खबरदार, कुछ बदमाश लोग गांधीभाई पर हमला करने को तैयार हैं, परन्तु यदि किसी ने उन्हें ज़रा भी नुकसान पहुंचाया, तो वह मेरे इस छुरे का

शिकार होगा।"

सिंह के समान खड़े उस पठान की ओर देखकर गांधीजी हँसे और बोले, "भाई मीर आलम, इतना गुस्सा किसलिए? मेरे पास आओ। हम सभी भाई-भाई हैं। कोई मुझपर हमला नहीं करेगा।"

मीर आलम वहीं खड़ा रहा और गरजकर बोला, "आप तो फकीर हैं। आपको पता नहीं, मैं सब जानता हूं। आपपर अंगुली भी उठानेवाले को मैं खत्म कर दूंगा।"

देखते-देखते वह तूफान शान्त हो गया। जो झगड़ा करने आये थे, वे एक-एक करके चले गये, लेकिन मीर आलम जबतक गांधीजी अपने डेरे पर नहीं पहुंच गये, बराबर उनके साथ रहा। यह वही मीर आलम था, जिसने एक दिन गांधीजी पर घातक हमला किया था।

: ६३ :

यह बात नीति की है

सन् १९२० तक अहमदाबाद में मजदूरों को दिवाली पर बोनस देने का कोई अवसर नहीं आया था। इसलिए इस संबंध में कोई नियम भी नहीं बने थे। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध में जब मिलों ने अच्छा मुनाफा कमाया तो मजदूरों को भी इसका कुछ खयाल आने लगा। उन्होंने बोनस की मांग की और इस मांग के फलस्वरूप उन्हें कुछ-न-कुछ मिलने भी लगा। वे हर महीने ऐसी

मांग करने लगे। मांग पूरी न होने पर वे मिलें बन्द करने की धमकी देने लगे। उन दिनों खूब मुनाफा हो रहा था। मशीनें कैसे बन्द हो सकती थीं? इसलिए मिल एजेन्ट मजदूरों को हर महीने पैसे देने लगे। साथ में मिठाई भी बांटने लगे।

गांधीजी को जब इस बात का पता लगा तो उन्हें यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, "अगर मिलों को लाभ होता है, तो वर्ष के अन्त में व्यवस्थित रूप से बोनस की मांग की जा सकती है, लेकिन मजदूरों की इस तरह की मांग और मालिकों पर डाला जानेवाला दबाव अनुचित ही माना जायगा। मालिकों को भी इस तरह के दबाव के सामने झुकना नहीं चाहिए।"

लेकिन मिल-मालिक क्या करें? वह तो पैसा कमाने का समय था। मजदूर बोनस न मिलने पर मिल बन्द करवा दें, तो कितनी हानि हो। इसलिए एक मिल-मालिक ने कहा, "मैं तो मजदूरों को पैसे भी दूंगा और उन्हें मिठाई भी बाटूंगा। मशीनें चलती रहें, इसलिए मजदूरों को खुश रखने की मैं हर कोशिश करूंगा। गांधीजी अगर चाहते हैं तो वह मजदूरों को समझायें।"

लेकिन मजदूर भी कहां समझनेवाले थे! गांधीजी ने कहा, "हर महीने किसी भी नियम अथवा हिसाब के बिना बोनस मांगना और लेना उचित नहीं कहा जा सकता। मिल-मालिकों पर दबाव तो कभी डाला ही नहीं जा सकता।"

मजदूर-नेताओं का उत्तर था, "साहब, हम तो गरीब आदमी ठहरे। हमें तो जिस समय, जिस ढंग से, जो कुछ भी मिल जाय वह लेना होगा। इसके सिवा हम इस बारे में आपमें से किसीको तकलीफ नहीं देते। हम तो खुद ही मालिकों से जो

कुछ मिल जाय वही ले लेते हैं। इसमें आपके या अनुसूयाबेन के बीच में पड़ने की जरूरत नहीं है।"

गांधीजी बोले, "यह बात नीति की है। मुझे बीच में पड़ना ही होगा। आप लोग गरीब हैं, इसलिए आपको पैसा मिले तो मुझे खुशी ही होगी, लेकिन आप अनुचित रीति से पैसे पायें, इसमें आपका हित नहीं है, और इसमें हम आपका साथ नहीं दे सकते। यदि आप इसी तरह आचरण करना चाहें तो मुझे आपके काम से अलग होना पड़ेगा और अनुसूयाबेन को भी अलग होने की सलाह देनी पड़ेगी।"

इसपर भी मजदूर नहीं माने तो गांधीजी और अनुसूयाबेन नें अपने पदों से इस्तीफा दे दिया और उन्होंने मजदूरों से अपने कागजात और पैसे ले जाने के लिए कहा। लेकिन मजदूर-नेताओं ने कहा, "बहियां और पैसे आप अपने पास रहने दीजिये। यदि हम ले जायंगे तो हममें जो अप्रमाणिक होंगे वे इन्हें उड़ा देंगे। इसलिए आप इस्तीफा भले ही दें, लेकिन सब सामान अपने पास रहने दीजिये।"

वे चले गये। लेकिन कुछ ही दिनों बाद कालुपुर मिल के मजदूरों को अपनी भूल समझ में आ गई और उन्होंने कहा, "हमारी भूल हुई। हम दुखी हैं। आपके बिना हमारा काम नहीं चल सकता। आप जैसा कहेंगे वैसा ही हम करेंगे।"

दूसरे क्षेत्र के मजदूरों ने उनका मजाक उड़ाया, लेकिन तीन महीने बीतते-न-बीतते सभी मजदूर-नेता गांधीजी की बात को समझ गये और इस प्रकार मजदूर-संघ पुनः गांधीजी के मार्ग-दर्शन के अनुसार अनुसूयाबहन की अध्यक्षता में चलने लगा।

इसके बाद अक्तूबर मास में पंचों की बैठक में बोनस का प्रश्न उठा और उसमें दिवाली के बोनस के रूप में एक महीने का वेतन मजदूरों को देने का निर्णय हुआ। मजदूरों की सेवा का काम आत्मा को संतोष देनेवाला तो है ही, गम्भीर जिम्मेदारियों से भरा हुआ भी है।

: ६४ :

मैं मजदूरों की गुलामी में नहीं फंसूंगा

खिलाफत-आन्दोलन के समय अली-भाई देश का दौरा करते हुए अहमदाबाद पधारे। वे ईद के त्योहार के बाद आये। मजदूरों में खूब उत्साह फैला हुआ था। उनके स्वागत के कारण तीन दिन ईद की छुट्टी मनाने के बाद भी वे काम पर नहीं आये।

संयोग से उस दिन केवल मौलाना शौकतअली ही अहमदाबाद आये। मौलाना मोहम्मद अली अगले दिन आनेवाले थे। उस दिन भी मिल के मजदूरों ने छुट्टी मनाने का निश्चय किया। ईद के त्योहार की वे दो के स्थान पर तीन छुट्टियां मना चुके थे। चौथे दिन उन्होंने मौलाना शौकत अली का स्वागत किया। अब पांचवें दिन वे मौलाना मोहम्मद अली का भी इसी प्रकार स्वागत करना चाहते थे। मजदूर-नेताओं ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, लेकिन वातावरण ऐसा बन गया था कि किसी ने उनकी बात नहीं सुनी। पांचवें दिन भी मिलें बन्द रहीं।

गांधीजी को जब इस बात की सूचना मिली, तो वह बहुत नाराज हुए। संध्या के समय अली-बन्धुओं के स्वागत में जो सभा हुई, उसमें बोलते हुए उन्होंने मजदूरों को कड़े शब्दों में धिक्कारा, कहा, "मजदूरों ने आज काम नहीं किया। ऐसा करके उन्होंने अपनी नाक काट ली। वे मुझे धोखा नहीं दे सकते। हिन्दुस्तान में कोई भी आदमी मुझे धोखा नहीं दे सकता। मैं हिन्दुस्तान को गुलामी से छुड़ाने का जी-तोड़ प्रयत्न कर रहा हूं। मैं मजदूरों की गुलामी में नहीं फंसूंगा। आप लोग मिलों में काम करके अली-बन्धुओं का उत्तम स्वागत कर सकते थे। कल का कड़वा घूंट तो मैं जैसे-तैसे पी गया था, लेकिन आज का यह घूंट पीना मेरे लिए असंभव है। जितने घंटे आप काम से दूर रहे, उतने घंटों का काम पूरा कर दीजिये, उसीमें आपकी सज्जनता है।"

मौलाना मोहम्मद अली ने भी गांधीजी का समर्थन किया। अब तो मजदूरों का नशा जैसे उतर गया था। उन्होंने नेताओं के वचनों को सिर आंखों पर चढ़ाया। वे तीन दिन तक गलत तरीके से गैरहाजिर रहे थे। उन्हें तीन दिन के तीस घंटों का काम पूरा करना था। उन्होंने एक महीने तक रोज एक घंटा ज्यादा काम करके अपनी गलती का प्रायश्चित कर डाला।

: ६५ :

तुमने सत्य की अवहेलना की है

गांधीजी उन दिनों (१९२९) रेल द्वारा उत्तर प्रदेश का भ्रमण कर रहे थे। एक दिन सदा की तरह वह तीसरे दर्जे में बैठे हुए थे। उनका पौत्र कांति गांधी भी उनके साथ था। गाड़ी तेज गति से चली जा रही थी, परन्तु गांधीजी अपने साप्ताहिक पत्रों 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के लिए लेख लिखने में व्यस्त थे। सामने कागज-पत्र बिखरे पड़े थे। उन्हींमें से किसी कागज के नीचे उनकी कलाई की घड़ी रखी हुई थी। सहसा उन्होंने जानना चाहा कि समय क्या है? घड़ी दिखाई नहीं दी तो उन्होंने कांति से पूछा, "क्या बजा है?"

घड़ी देखकर कांति ने कहा, "पांच बजे हैं।"

तबतक गांधीजी की दृष्टि भी घड़ी पर चली गई। उन्होंने देख लिया, पांच बजने में एक मिनट शेष है। उन्हें यह लापरवाही बहुत अखरी। लिखना बन्द करते हुए उन्होंने कांति की ओर देखा और कहा, "जरा ठीक तरह से देखो, क्या बजा है?"

इस बार कांति ने ध्यान से देखा और कहा, "पांच बजने में एक मिनट बाकी है।"

अब गांधीजी बोले, "तुमने पहले क्या कहा था? ऐसा है तो फिर घड़ी रखने से क्या लाभ? तीस करोड़ मिनटों को

जोड़ो, देखो कितने महीने और कितने दिन होते हैं ? अगर पांच की जगह एक मिनट कम पांच कहते तो क्या हो जाता ? तुमने सत्य की अवहेलना की है। ठीक नहीं किया। भविष्य में ऐसी गफलत कभी न करना।"

: ६६ :

हिन्दुस्तान क्या भिखारी देश है ?

२ अक्तूबर, १९४७, गुरुवार का दिन, गांधीजी का अन्तिम जन्म-दिन।

वह बिरला हाऊस दिल्ली में ठहरे हुए थे। सदा की भांति साढ़े तीन बजे प्रार्थना के लिए उठे। घर के और लोग भी प्रार्थना के लिए आ पहुंचे। सबने बारी-बारी गांधीजी के पैर छुए। मनु हंस कर बोली, "यह कहां का न्याय है! अपने जन्म-दिन पर तो हम सबके पैर छूते ही हैं। आपके जन्म-दिन पर भी उल्टे हमें ही आपके पैर छूने पड़ रहे हैं।"

गांधीजी बोले, "हां, महात्माओं के लिए हमेशा उलटा ही नियम रहता है। तुम सबने मुझे महात्मा बना दिया है न! फिर मैं झूठा महात्मा ही क्यों न होऊं, लेकिन हमारा कायदा यह है कि 'महात्मा' शब्द आया और सब हो गया। उसका सच्चा-झूठापन देखने की जरूरत नहीं है।"

उन दिनों गांधीजी अस्वस्थ थे, लेकिन फिर भी प्रार्थना के बाद सोए नहीं। हरिजन-पत्रों के लिए लेख लिखने बैठ गये।

खांसी बहुत परेशान कर रही थी। डाक्टरों ने उन्हें पेंसिल न लेने की सलाह दी थी, लेकिन गांधीजी का वही उत्तर था, "मेरा राम नाम कहां गया ? अगर राम-नाम दिल में उतर जाय तो खांसी कल ही चली जाय। अगर तीन हफ्ते रही तो मैं सारे संसार से कहने के लिए तैयार हूं कि मेरा राम-नाम झूठा है।"

डाक्टर कहते, "यह सब ठीक है, लेकिन विज्ञान ने इतनी खोज की है। उसे आप गलत कैसे कह सकते हैं ? आप चाहे जितने दिल से रामनाम लेनेवाले लाइये, मैं उनमें हैज़ा फैला सकता हूं।"

गांधीजी फिर वही उत्तर देते, "यह उद्दण्डता है। विज्ञान को अभी बहुत खोज करनी बाकी है। रामनाम अगर श्रद्धा से लिया जाता हो तो दुनिया में कोई बीमार पड़ ही नहीं सकता। इतने स्वच्छ, निष्पाप दुनिया के लोग बन जायं तो मुझे यकीन है कि किसी को कोई बीमारी ही न हो। कल आप अगर मुझे लिवर खिलायें या लिवर एक्सट्रेक्ट का इंजेक्शन दें तो क्या मुझे विदेश की बनी चीजें लेनी चाहिए ? हिन्दुस्तान बड़ा आलसी देश है। डाक्टर लोग तो सबसे बड़े आलसी हैं। वे अपने देश में कुछ नहीं बना सकते। हिन्दुस्तान क्या भिखारी देश है ? यहां कुदरत सबकुछ देती है, फिर भी हमें भीख मांगनी पड़ती है। जब मुझे इन बातों का खयाल आता है तो बहुत दुख होता है। मैंने तो बहुत किया है। अब कुछ करने की इच्छा नहीं होती है। अब तो जी चाहता है, इस दुनिया से चला जाऊं और वह भी राम-राम करते हुए। राम नाम में कितना रहस्य भरा हुआ है, यह मैं आप लोगों को समझा नहीं सकता। आज तो मैं आवे में

बैठा हूं। चारों ओर आग जल रही है। आप डाक्टर लोग जैसे विज्ञान की खोज करते हैं, वैसे ही मैं राम-नाम की खोज करता हूं। कर सका तो ठीक, नहीं तो खोजते-खोजते मर जाऊंगा। आप मुझे २ अक्तूबर के निमित्त प्रणाम करने के लिए आये हैं। यह आपके प्रेम की निशानी है। लेकिन अब तो चाहता हूं कि या तो अगली चर्खा बारस तक मैं यह आग देखने के लिए जिन्दा न रहूंगा या हिन्दुस्तान बदल गया होगा। इसलिए मेरी लम्बी उम्र के लिए प्रार्थना करने के बजाय, मैं जैसी प्रार्थना करता हूं, वैसी ही आप भी कीजिए।"

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनकी संख्या लेखकों के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है :

अकालपुरुष गांधी (जैनेन्द्रकुमार) २६
इंग्लैंड में गांधीजी (महादेव देसाई) ४३
एकला चलोरे (मनुबहन गांधी) ५२
ए गांधियन पेट्रियार्क (माघोप्रसाद) ५०
गांधी अभिनंदन ग्रंथ (सर्वपल्ली राधाकृष्णन्) ३३
गांधी मार्ग (जन० १९६९) रामेश्वरदयाल दुबे १, ३६
गांधी : व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव (संकलन) श्रीमन्नारायण ११
" " " (संकलन) कुमारी म्यूरियल लेस्टर ३१
गांधी शताब्दी पारिजात स्मारिका (संकलन) मदनमोहन पांडे ३०
गांधी : संस्मरण और विचार (संकलन) ३२
गांधीजी (संपा० जी० डी तेंदुलकर) २५, ३५, ५५, ५७, ५८
गांधीजी और मज़दूर प्रवृत्ति (शंकरलाल बैंकर) ६३
गांधीजी की देन (डा० राजेन्द्रप्रसाद) २८
गांधीजी की यूरोप-यात्रा (मि० म्यूरियल लेस्टर) ४४
गांधीजी की साधना (रा० म० पटेल) ६०, ६१, ६२
गांधीजी के जीवन-प्रसंग (संकलन) घनश्यामदास बिड़ला २९
गांधीजी के संपर्क में (सं० चन्द्रशंकर शुक्ल) ३७, ३८
जीवन प्रभात (प्रभुदास गांधी) ५९
दीदी (मार्च १९४८) संत निहालसिंह २

बापू : मेरी मां (मनुबहन गांधी) ६६
बापू-स्मरण (संकलन) ४५, ४६, ४७, ४८
बापू की कारावास-कहानी (सुशीला नैयर) २७
बापू की छाया में (बलवंतसिंह) ५१
बापू की झांकियां (काका कालेलकर) ४१
बापू की मीठी-मीठी बातें (साने गुरुजी) १२, १४
बापू की विराट वत्सलता (काशिनाथ त्रिवेदी) ४०
बापू के चरणों में (ब्रजकृष्ण चांदीवाला) ४२
बिहार की कौमी आग में (मनुबहन गांधी) ४
महादेवभाई की डायरी भाग १ (महादेव देसाई) ३४
,, ,, भाग २ (,, ,,) ८, ३९
,, ,, भाग ३ (,, ,,) ५, ६, १०
,, ,, भाग ४ (,, ,,) ३, ९
मेरे हृदयदेव (हरिभाऊ उपाध्याय) १३, ५६
युग-प्रभात (अक्तूबर १९६९) सिद्धवन हलिल कृष्ण शर्मा २०, २१
रेमजे सेंसिज (संकलन) कांति गांधी ६५
हरिजन सेवक (संपा० महादेव देसाई) १५, १६, १७, १८ १९, २२, ५३
हरिजन-सेवा (नव०-दिसं० १९६९) प्रो० मलकानी ४९
हिन्दी नवजीवन (१९२७) २३, २४, ५४

सस्ता साहित्य मंडल • श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान • संयुक्त प्रकाशन

इस माला की पुस्तकें

□

१. प्रभु ही मेरा रक्षक है
२. संगठन में ही शक्ति है
३. यदि मैं तानाशाह बना
४. त्याग हृदय की वृत्ति है
५. मेरा पेट भारत का पेट है
६. मैं महात्मा नहीं हूं
७. यह तो सार्वजनिक पैसा है
८. हम कभी दम्भी न बनें
९. मेरा धर्म सेवा करना है
१०. हे राम ! हे राम !!

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है।